RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17 प्रकाशन तिथि 29 फरवरी 2016

चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका फरवरी-मार्च 2016

माँ, नदी हँसती क्यों है?
– क्योंकि सूरज नदी को गुदगुदाता है।
माँ, नदी गाती क्यों है?
– क्योंकि अबाबील चिड़िया ने नदी की आवाज़ की तारीफ की थी।
माँ, नदी ठण्डी क्यों है?
– क्योंकि उसे याद है, एक ज़माने में बर्फ ने उससे प्रेम किया था।
माँ, नदी की उम्र कितनी है?
– उतनी ही जितनी चिरयुवा बसन्त की उम्र है।
माँ, नदी कभी आराम क्यों नहीं करती?
– वह इसलिए कि समन्दर उसकी माँ है और माँ इन्तज़ार कर रही है कि बेटी जल्दी से घर लौट आए।

- शुन्तारो तानिकावा
अँग्रेज़ी से अनुवादः गीत चतुर्वेदी

मूल्य ₹ 100

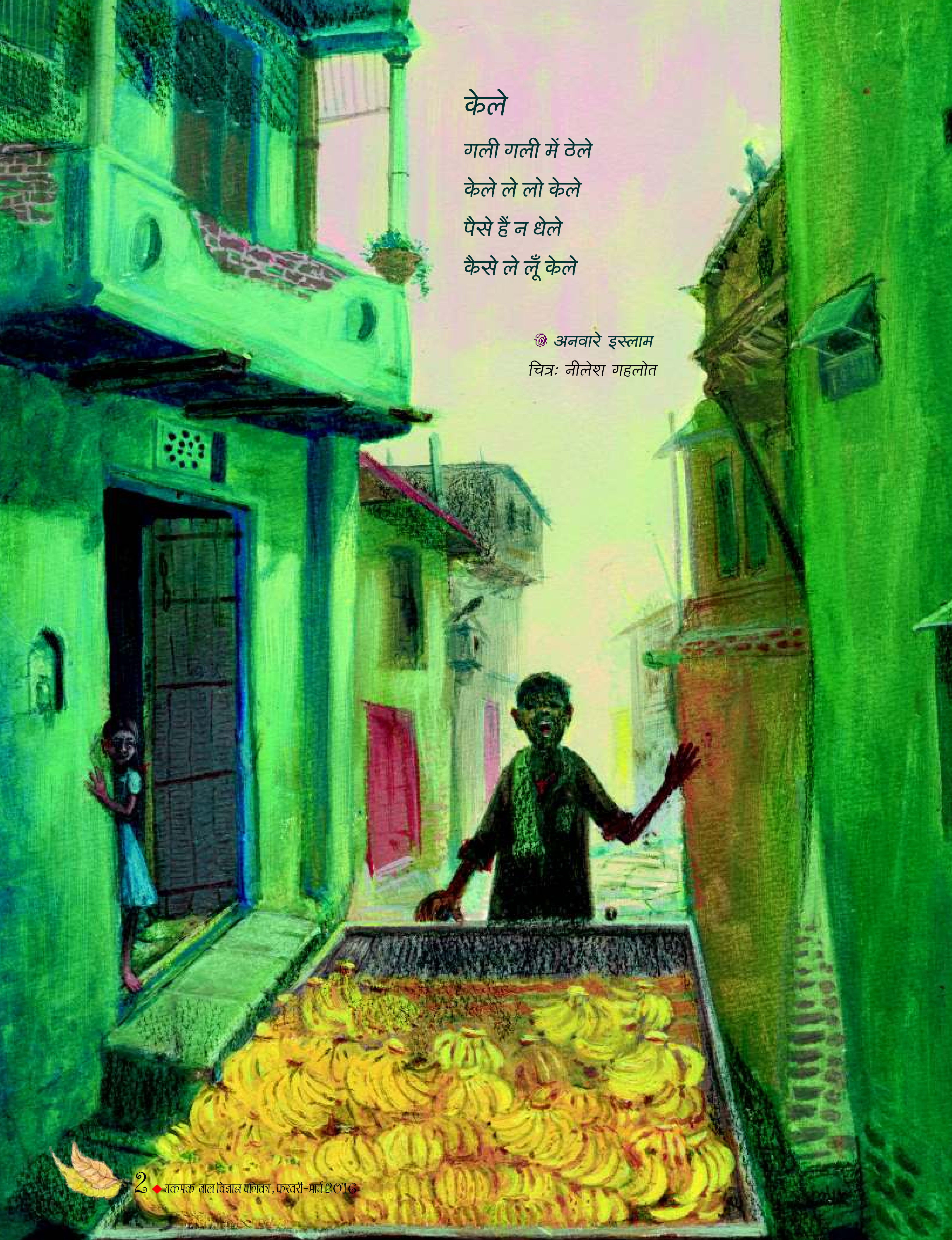

केले

गली गली में ठेले
केले ले लो केले
पैसे हैं न धेले
कैसे ले लूँ केले

@ अनवारे इस्लाम
चित्रः नीलेश गहलोत

बाल विज्ञान पत्रिका
चकमक
अंक 353-4 फरवरी-मार्च 2016

- अक्षी लूथर, सातवीं, सनसिटी स्कूल गुड़गाँव

इस अंक में

1 माँ, नदी हँसती क्यों है? - शुन्तारो तानिकावा
2 केले कविता - अनवारे इस्लाम
4 प्यारे भाई रामसहाय - स्वयं प्रकाश
6 पुरानों से भी पुराने पेड़ - बेथ मून
10 खत्म - शामली
12 गडरिए - प्रभात
14 ध्वनि - अरुण कमल
16 इजोड़-बिजोड़
18 लड़ाई का खेल - चन्दन यादव
20 अगर सभी कुछ एक सा होता - रमेश उपाध्याय
22 बातूनी - हरिशंकर परसाई
26 मेरे पड़ोसी का जाना...- अजय गाडीकर
28 भाषा भौंक से अर्थ आँख से - दिलीप चिंचालकर
30 ज़ीरो - यमुना केसवानी
32 कहानियों का शहर - रुकमणी बनर्जी
36 धूप - उदयन वाजपेयी व एंड्रू वेथ की दुनिया - आत्रेयी डे
39 रात - रुस्तम सिंह
40 निम्बू या सिरके से टॉयलेट क्लीनर - अंकुश गुप्ता
42 एक था हाजी एक था नाजी - स्वयं प्रकाश
44 परीक्षा न हो तो... - सुशील जोशी
46 बोली रंगोली - गुलज़ार
50 उजाला - सेवकराम यात्री
53 कुछ कबूतर और एक कौए की दोस्ती - पूनम त्रिखा
54 चींटी की छाया में फरवरी - सुशील शुक्ल
57 एक गतिविधि - विवेक मेहता
58 टैक्स - लियो टॉलस्टॉय
60 बड़ी इमारतें - उमा सुधीर
65 सर्दियाँ - पद्‌मजा गुनगुन
66 मेरा पन्ना
72 माथापच्ची
74 डबल सपना - टुलटुल बिस्वास
76 दोस्त - शशिकिरण
82 कीटों की दुनिया - भरत पुरे
84 हलकी नीली दुनिया - कार्ल सेगान
86 जी, आया साहब! - सआदत हसन मण्टो
91 अच्छे बच्चे - नरेश सक्सेना
92 उम्मीद का उड़ता परिन्दा - निधि सक्सेना
95 चित्र पहेली - कविता तिवारी
96 नदी - केदारनाथ अग्रवाल

आवरण चित्र
चन्द्रमोहन कुलकर्णी

सम्पादन
सुशील शुक्ल
शशि सबलोक

सहायक सम्पादक
कविता तिवारी

विज्ञान सलाहकार
सुशील जोशी

डिज़ाइन
दिलीप चिंचालकर

वितरण
सोमेश दास

सहयोग
वरुण ग्रोवर
प्रभात
मिहिर
कमलेश यादव

विप्रो एप्लाइंग थॉट इन स्कूल्स के वित्तीय सहयोग से विकसित

एक प्रति :	50.00
वार्षिक :	500.00
तीन साल :	1350.00
आजीवन :	6000.00

सभी डाक खर्च हम देंगे।

चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं।
एकलव्य भोपाल के खाते में ऑनलाइन जमा करने के लिए विवरण-
बैंक का नाम व पता - स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, महावीर नगर, भोपाल
खाता नम्बर - 10107770248
IFSC कोड - SBIN0003867
कृपया खाते में राशि डालने के बाद इसकी पूरी जानकारी accounts.pitara@eklavya.in पर ज़रूर दें।

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल, म.प्र. 462 016, फोन: (0755) 4252927, 2550976, 2671017
फैक्स: (0755) 2551108, e mail - chakmak@eklavya.in, e mail - circulation@eklavya.in, www.chakmak.eklavya.in, www.eklavya.in

प्यारे भाई रामसहाय

स्वयं प्रकाश

शाम को स्कूल के मैदान पर बड़ी कक्षाओं के लड़के अँधेरा होने तक फुटबॉल खेलते थे। कभी-कभी हम भी उनमें शामिल हो जाते थे। ये ज़्यादातर मिल एरिया के लड़के थे जिनकी आर्थिक स्थिति कुछ खास अच्छी नहीं थी। लगातार दो घण्टे दौड़ने-भागने के बाद ज़ाहिर है कसकर भूख भी लगती, लेकिन जेब में किसी के भी एक पैसा भी नहीं होता।

मैदान के साथ-साथ एक सड़क जाती थी जिस पर झुटपुटा होते ही गाँव की तरफ से गन्ने, गुड़, सब्ज़ी या अनाज से भरी बैलगाड़ियाँ आनी शुरू हो जाती थीं। खेल के बाद मैदान में घेरा बनाकर बैठे हम बच्चों में से कैलाश और दयाराम उठते, दबे पाँव सड़क तक जाते, दो-चार कदम बैलगाड़ी के पीछे चलते, फिर कूदकर बैलगाड़ी के पीछे चढ़ जाते और डाले में हाथ डालकर जो भी हाथ लगता-गोभी का फूल या गुड़ की भेली या तीन-चार मूलियाँ या मूँगफली- लेकर कूद जाते और भागकर मैदान में आ जाते। देखते-देखते ये सबमें बँट जातीं और पलक झपकते ही खत्म हो जातीं। और बगैर एक भी मिनट और रुके सब अपने-अपने घरों की ओर रवाना हो जाते। हम होते तो हमें भी भोग लगाने का मौका मिल जाता।

ये बड़े लड़के थे – लम्बे-पूरे। ये लँगोट पहनते थे और गणेश मण्डल के अखाड़े में दण्ड-बैठक लगाते थे।

हम सोचते बड़े होने के कितने ठाठ हैं! काश, हम भी इनकी तरह लम्बे-चौड़े होते!

लेकिन एक दिन हमें भी एक मौका मिल ही गया।

राधेश्याम ने एक दिन बताया कि लाल बाग में खूब ज़ोरदार अमरूद लगे हैं और दोपहर को माली आराम करते हैं। एक बार किसी तरह घुस जाओ तो पेट भरकर अमरूद खाए जा सकते हैं।

बस, उसके कहने की देर थी कि योजना बन गई और अगले दिन बीच की छुट्टी में हम लोग लाल बाग पहुँच गए जो हमारे स्कूल के पीछे ही था।

लाल बाग के पीछे की दीवाल फाँदकर हम लोग भीतर घुस भी गए – एकदम चुपचाप। दबे पाँव। कोई रखवाला नज़र नहीं आ रहा था।

सब एक-एक कर पेड़ों पर चढ़ गए और पत्तों के बीच गायब हो गए।

सब चढ़ गए लेकिन सप्पू नहीं चढ़ पाया। उसे पेड़ पर चढ़ना नहीं आता था। उसने दो-तीन बार कोशिश भी की, लेकिन इस कोशिश में हाथ-पाँव भी छिलवा बैठा। उसने पास के पेड़ पर बैठे मज़े से अमरूद खाते जक्कू से कहा, “एक अमरूद नीचे फेंक दे यार! मुझसे चढ़ते नहीं बन रहा है!” जक्कू अमरूद फेंकने की बजाय फुसफुसाकर पेड़ पर चढ़ने के गुर सिखाने लगा।

सप्पू ने आसपास देखा। एक पेड़ के नीचे एक बड़ा-सा पत्थर पड़ा था। सप्पू वह पत्थर उठाकर पेड़ के नीचे ले आया और उस पर चढ़कर किसी तरह पेड़ पर चढ़ने में सफल हो गया। ज़िन्दगी में वह पहली बार किसी पेड़ पर चढ़ा था। उसे खुद पर गर्व जैसा हो रहा था, लेकिन साथ ही डर भी लग रहा था कि बच्चू! चढ़ तो गए, लेकिन उतरोगे कैसे? और उतरते न बना और रखवाला आ गया तो? और कूदने में हाथ-पाँव टूट गए तो?

तभी कुछ लोगों के चिल्लाने की आवाज़ें आईं और देखा कि दो काले-काले मोटे-ताज़े राक्षस जैसे माली हाथ में लाठी लिए हमारी तरफ दौड़ते आ रहे हैं।

राधेश्याम चिल्लाया, “भागो रे! माली आ गया।”

मालियों या रखवालों – या वे जो भी थे – उन्होंने सिर्फ धोतियाँ पहन रखी थीं और उनके मोटे-तगड़े, नंगे काले बदन धूप में चमक रहे थे। सबके हाथों में लाठियाँ थीं और सबकी आँखें लाल-लाल थीं। वे इस तरह आ रहे थे जैसे कोई सेना आक्रमण करने आती है।

धमाधम एक के बाद एक सब कूदे और बाउंड्री की दीवार पर चढ़कर बगीचे से बाहर निकल गए। माली लोग एक भी बच्चे को नहीं पकड़ पाए।

लेकिन सप्पू से न तो पेड़ से उतरा गया न कूदा गया। जब राक्षस एकदम सर पर ही आ गए तो वह जान बचाकर किसी तरह पेड़ से कूदा और ज़मीन पर गिर गया। फिर उठकर तुरन्त जेब में भरे अमरूद निकाल-निकालकर फेंकने लगा। उसकी रुलाई छूट गई और निक्कर भी गीली हो गई। जैसे ही माली सामने आया, उसने रोते-रोते हाथ जोड़ दिए और माफी माँगने लगा। वह डर के मारे बुरी तरह काँप रहा था।

उसकी हालत देखकर माली की भी हँसी छूट गई। उसने सप्पू को गोदी में उठाकर दीवाल पर चढ़ा दिया, ताकि वह दूसरी तरफ कूद सके और ज़मीन पर से उठाकर उसे दो अमरूद भी दे दिए।

सब दौड़ते-दौड़ते स्कूल आ गए और मैदान में बैठकर अपने लाए अमरूद खाने लगे। सब बेहद खुश और बेहद उत्तेजित थे और अपनी-अपनी चतुराई की डींग हाँक रहे थे – सप्पू को छोड़कर।

सब बेहद स्वाद ले-लेकर अमरूद खा रहे थे।

लेकिन सप्पू को अमरूद में ज़रा भी स्वाद नहीं आ रहा था।

शायद तरस खाकर दिए गए अमरूद में वह स्वाद नहीं होता जो चोरी के अमरूद में!

बहुत देर के बाद सप्पू को समझ में आया कि चोरी करना बुरी बात है, लेकिन कोई तुम पर तरस खाए, यह उससे भी ज़्यादा बुरी बात है।

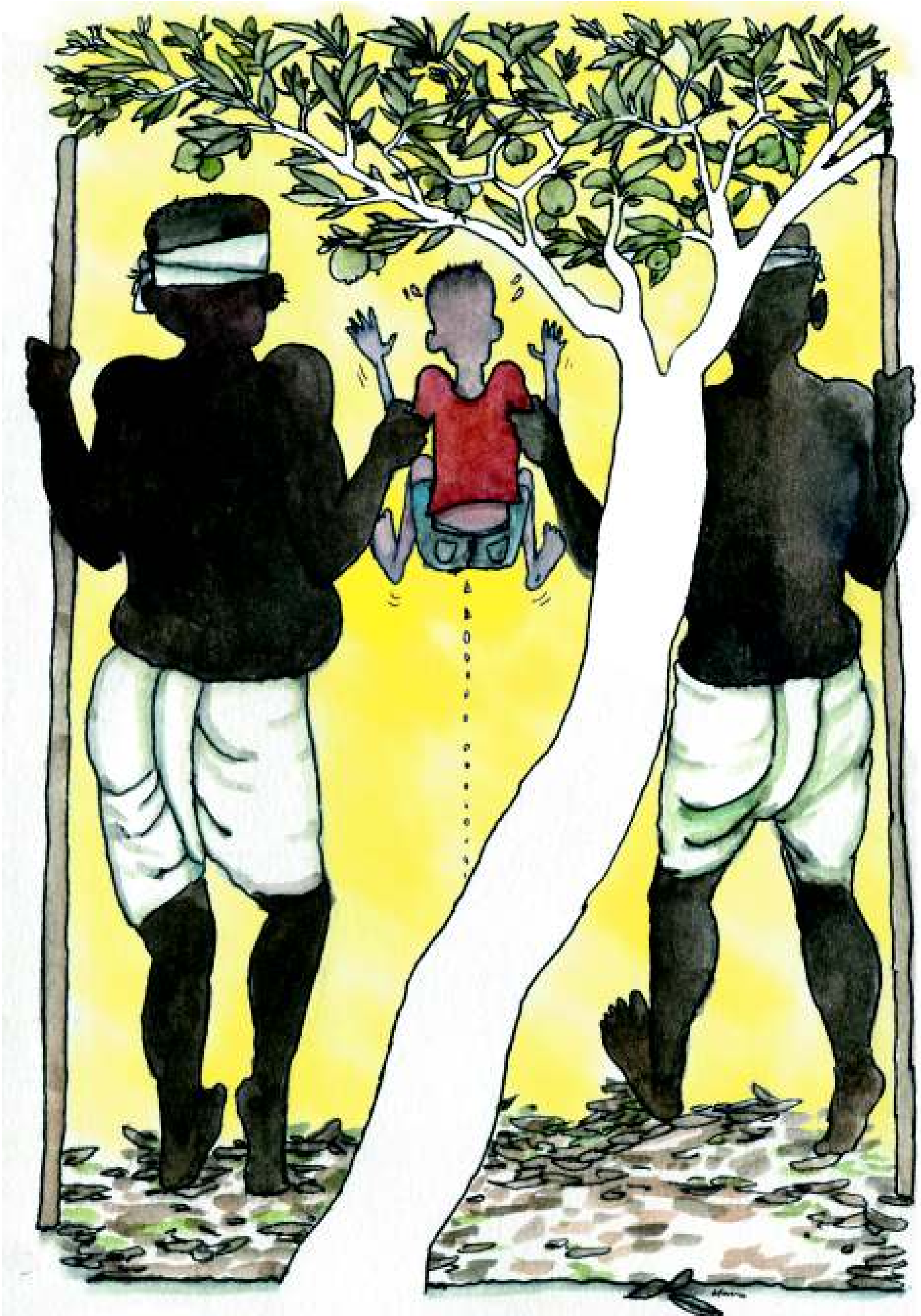

चित्रः अतनु राय

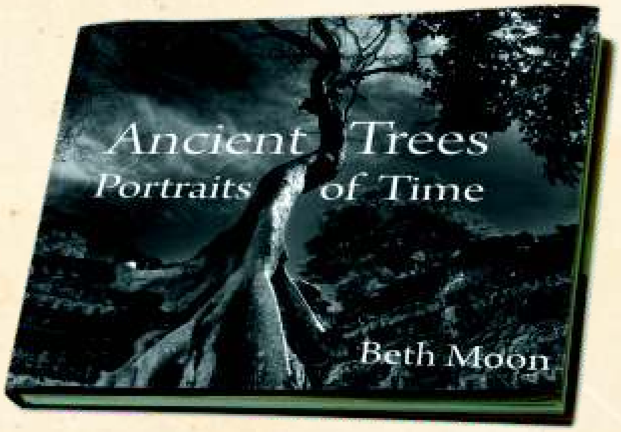

पुरानों से भी पुराने पेड़

बेथ मून कहती हैं कि पेड़ों की कहानियाँ ज़िन्दा रहें इसलिए मैं तस्वीरें खींचती हूँ। जब पेड़ नहीं रहेंगे तब भी ये तस्वीरें रहेंगी। पेड़ों की कहानी शब्दों में कही ही नहीं जा सकती। तस्वीर ही इसे कह सकती है। एक दिन जब किसी तूफान, बीमारी, लालच, लापरवाही के चलते पेड़ नहीं रहेगा तो उसकी मज़बूती, उसकी खूबसूरती की कहानी ये तस्वीरें तब कहेंगी।

पेड़ों की तस्वीरें खींचने का मून बेथ का सफर इंग्लैण्ड से शुरू हुआ। "जैसे ही एक बहुत पुराने सदाबहार पेड़ को देखा मुझे उससे प्यार हो गया। वैसे भी इंग्लैण्ड में पुराने पेड़ बहुत हैं। ऐसा ही एक पुराना पेड़ था – विशाल Bowthorpe ओक। हरे पत्तोंवाली उसकी छतरी इतनी बड़ी थी कि देखने वाले की साँस ही रुक जाए। उसकी फोटो खींचे अभी छह ही महीने बीते होंगे कि एक भयानक तूफान में उसकी एक विशाल शाख टूट गई। इसके चलते पहले तो पेड़ के ऊपरी सिरे का एक हिस्सा गिर गया। फिर बाकी की शाखें भी उसके तने के खोखले में समा गईं। इसने मुझे बहुत दुखी किया। ऊँची इमारतों से भी ऊँचे और हमारे कितने स्मारकों से भी पुराने इन पेड़ों की कोई कद्र नहीं रही है। न जाने कितनी सदियों से कितने लोगों ने इन्हें देखा होगा, छुआ होगा, इसकी छाँव में बैठे होंगे...ये बातें पेड़ को कितना कीमती बना देती हैं। उस एक पेड़ के साथ न जाने कितने जीव-जन्तु हमेशा के लिए खत्म हो गए होंगे। मैं बेचैन हो गई और पूरी शिद्दत से अपने काम में जुट गई।

मुझे पुराने पेड़ों को देखने, उनकी तस्वीरें खींचने की धुन सवार हो गई। मैं एक से दूसरे देश, एक महाद्वीप से दूसरे गई। और पूरी तैयारी के साथ गई। किस मौसम में किस जगह जाऊँ कि उस पेड़ की मुझे सबसे बेहतरीन तस्वीरें मिलें। जैसे मैडागास्कर के बाओबाब की पूरी छटा तो तभी बिखरती है जब वह पूरी तरह से पत्तों से सजा हो। यानी बरसातों में। सोकोटरा का यमीनी द्वीप जो ड्रैगन्स ब्लड नाम से जानेवाले अद्भुत पेड़ों के लिए मशहूर है मॉनसूनी तेज़ हवाओं के कारण पूरी तरह से कट जाता है। कुछ बड़े बलूत (ओक) की तस्वीरें मुझे लगा सर्दियों में खींचनी चाहिए जब उसके सारे पत्ते झर गए हों। ऐसे में उनकी मुड़ी-तुड़ी विशाल शाखें और तना पूरी तरह से बेपर्दा रहता है।

बेथ मून

कुछ देशों में मैं उन्हीं पेड़ों के नीचे रही जिनकी तस्वीरें लेनी थीं। इससे मैं शाम की जाती रोशनी में और सुबह रोशनी की आहट लगते ही उनकी तस्वीरें ले पाई। उस रोशनी में पेड़ एकदम जादुई और भव्य लग रहा होता है। सोकेटरा के फ्रैंकिनसेंस जंगल में और कालाहारी में नमक की चादरों पर विशाल बाओबाव के नीचे रहने, रात गुज़ारने को तो महसूस ही किया जा सकता है। वो चिड़ियों की आवाज़ें वो तारों की रोशनी... कोई शब्द नहीं जो उसे कह पाएँ।

हवाएँ शाहबलूत की छाल को छूती हैं। उसे गढ़ती हैं। उसे आकार देती हैं। यह मुश्किलों और खूबसूरती की कहानी है। एक पुराने शाहबलूत का आकार समय है।

मैंने जिन पेड़ों की तस्वीरें लीं हो सकता है कि वनस्पतियों के जानकार उन्हें उस प्रजाति का सबसे बढ़िया उदाहरण न मानें। पर मैंने उन्हें चुना क्योंकि मुझे उनका आकार, उम्र, कहानियाँ अचम्भित कर गईं। और अकसर तो उनकी सुन्दरता, भव्यता ही मुझे उन तक खींच लाई। न जाने कितनी बार, कितनी-कितनी मुश्किलों को झेलकर भी वो आज ज़िन्दा हैं यह क्या कम है! वो आज हैं, और इस वक्त पृथ्वी पर ज़िन्दा हर इंसान से पहले भी वो थे और शायद इन सब के न होने पर भी वो रहेंगे यह कितनी बड़ी बात है। वो हमारे पूर्वज हैं। आदर से मेरा सिर झुक जाता है।

Dracaena cinnabari

जहाँ तक सम्भव हुआ इस किताब में मैंने पेड़ों की उम्र को भी दर्ज किया है। पर सही उम्र पता करना आसान नहीं। उनको काटकर उनके छल्लों से या कार्बन डेटिंग से उम्र पता लगाई जा सकती है पर वो पेड़ के तने को बर्बाद कर सकता है। और कई पेड़ तो खोखले हो चुके हैं या बढ़ना बन्द हो चुके हैं। इसलिए मैंने हर पेड़ के साथ यह कोशिश नहीं की है।

इस किताब के पेड़ 30 से 300 फीट तक ऊँचे हैं। उम्र में सबसे छोटा पेड़ महज़ कुछ सदियों पुराना है। और सबसे बुज़ुर्ग होगा कोई पाँच हज़ार साल पुराना! कोई पेड़ कितना जिएगा यह उसके जीन और जिस पर्यावरण में वो जी रहा है उसके मिलेजुले का नतीजा होता है। कुछ पेड़ जल्दी बढ़ते हैं, जल्दी बच्चों को जन्म देते हैं और जल्दी खत्म हो जाते हैं। पर कुछ बढ़ते ही चले जाते हैं अनन्त काल तक अगर उन पर कोई बाहरी दबाव न पड़े तो। कुछ सदियों से ज़्यादा जीनेवाले पेड़ अमूमन उन जगहों के मूल निवासी होते हैं जहाँ कुदरती आपदाएँ कम दखल देती हैं। पर ऐसा भी नहीं कि इन जगहों पर मौसम हमेशा सुहाना ही बना रहता है। ये जगहें भयानक गर्म, सूखी, बारिशवाली और ठण्डी भी हो सकती हैं। बेहद सर्दी, गर्मी या बारिश वाले मौसमों में वे बहुत धीरे-धीरे बढ़ते हैं। मैं यह भी सोचती हूँ कि अगर इन कुदरती आपदाओं से बच भी गए तो आरी, कुलहाड़ियों, आरा मशीनों से कैसे बच पाए! शायद इंसान की खाने, छत आदि जैसी ज़रूरतों को पूरा कर या फिर इंसानों की पहुँच से दूर रहकर, पहाड़ों के उस पार, दूर-दराज़ के द्वीपों पर, प्रतिबन्धित हलकों में।

मुझे याद आता है 1964 में नेवेदा की वो घटना जब 30 साल के एक शख्स ने यूँ ही ब्रिस्टलकोन पाइन का एक पेड़ काट दिया। वो लगभग 5000 साल पुराना पेड़ था। इतिहासकार एरिक रुटकॉव लिखते हैं – ये वो पेड़ था जिसकी कोंपलें तब फूटी थीं जब सुमेरियाई लोग पहली लिपि लिख रहे थे, जवान हुआ जब रोम में जूलियस सीज़र राज कर रहा था और कोलम्बस जब हिस्पेनियोला पहुँचा तो वो झुर्रियों से भर चुका होगा। और 30 साल के डॉनाल्ड करी ने तब तक के सबसे पुराने पेड़ को यूँ ही बेवजह खत्म कर दिया...।

साभारः एंशिएंट ट्रीज़ पोर्ट्रेट ऑफ टाइम, एबेबिले प्रकाशन, लन्दन

Bristlecone Pine - *Pinus Longaeva*

किसी बुज़ुर्ग पेड़ की झुर्रीदार, दरकी, मुड़ी-तुड़ी, खूबसूरत छाल में समय दिखाई देता है।

सुगन्ध और सुमन की तरह...

Angkor Passage *(Tetrameles nudiflora)*

ता प्रोहम, कम्बोडिया

खमेर साम्राज्य की प्राचीन राजधानी अंगकोर के मन्दिर आज मौजूद प्राचीनतम इमारतों में से एक हैं। 12वीं शताब्दी में बने ये बौद्ध मन्दिर ता प्रोहम और ता सोम जंगलों के बीच लगभग खण्डहर बने हुए हैं। *Tetrameles nudiflora* की सर्पीली जड़ों ने इन्हें ढाँप-सा लिया है। क्या पता, इससे पेड़ और खण्डहर होते मन्दिर, दोनों को तसल्ली मिलती होगी! मन्दिर के पुराने पत्थरों से उतरते हुए ये जड़ें नीचे मिट्टी से मिलने को अधीर हैं! कुछ जगहों पर तो *Tetrameles nudiflora* की जड़ों पर *Ficus sp.* की जड़ें पूरी तरह से काबिज़ हो रही हैं। इन्हें देखकर यकीन हो जाता है कि अगर इंसानी दखल न हो तो पेड़ विशाल पहाड़ों के साथ भी क्या कर सकते हैं।

इतनी बड़ी छतरी...

Dragon's Blood Tree *(Dracaena cinnabari)*

सोकोट्रा, यमन

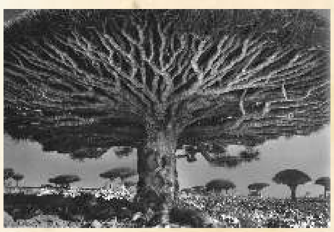

हेगियर पहाड़ों को ओढ़े इन ड्रेगन्स ब्लड (*Dracaena cinnabari*) को देख अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि लाखों साल पहले दुनिया कैसे लगती होगी। लगभग 5000 साल पुराने ये अजूबे पेड़ स्कोट्रा द्वीप के अलावा कहीं नहीं दिखते। बेहद मुश्किल स्थितियों में बढ़ते हुए इन पेड़ों ने समय के साथ अपनी शाखें ऊपर उठा ली हैं ताकि ऊँची जगह की धुँध से नमी ली जा सके। साल में दो बार इस द्वीप में रहनेवालों को इसके तने को काटने की इजाज़त मिलती है। वे इससे निकलनेवाला गहरा लाल दूध भी इकट्ठा करते हैं जो दवा बनाने के काम आता है। कभी यह एक बड़े जंगल का हिस्सा था। इसके आसपास के पेड़ अब लगभग विलुप्त हो गए हैं। इसके कारण जो गिनाए जाते हैं वो हैं, बकरियों द्वारा चरा जाना, अँधाधुँध कटाई और इन पेड़ों के इतने बड़े फैलाव की वजह से नीचेवाले पेड़ों तक रोशनी न पहुँचना।

Bristlecone Pine *(Pinus Longaeva)*

इनवो नैशनल पार्क, कैलिफोर्निया

सफेद पहाड़ों के ऊपर कितने ही पाइन थे – तेज़ हवाओं के थपेड़े खाते, मुड़े-तुड़े। इनमें से कई तो करीबन 4000 साल पुराने थे। पानी की कमी और मौसमी उठापटक ने इनकी बढ़त को रोक दिया है। पर सब कुछ सह जाने की इनकी क्षमता अद्भुत है। इतनी लम्बी उम्र का एक कारण तो इनकी लकड़ी है जो बहुत ही टिकाऊ है। इतनी ऊँचाई पर ऐंठे-से खड़े ये पेड़ दुनिया के सिर पर बसे से लगते हैं। इनवो राष्ट्रीय पार्क के रेंजर ने बताया कि यहाँ का सबसे पुराना पेड़ कोई 4 मील दूर है। हम खाड़ियों से होते बेहद मुश्किल रास्ते से वहाँ पहुँचे भी, उसे देखा भी पर वो लोगों की पहुँच से दूर ही बना रहे इसलिए उसकी फोटो नहीं खींची।

चक
मक

क्यों चाहिए हमें पुराने पेड़?

इतनी सदियों से बीमारियों, मौसम की मार और दूसरी मुसीबतें झेलने के बावजूद ज़िन्दा बचे पेड़ जैविक रूप से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इनके जीन आदि पर शोध किया जाना चाहिए। इतने लम्बे समय तक एक जगह पर टिके रहने से शैवाल, वनस्पतियों, जन्तुओं, कीड़ों की एक पूरी की पूरी दुनिया इनमें बसने लगती है। इनका या पुराने पेड़ोंवाले जंगलों का खत्म होना पर्यावरण के लिए एक गम्भीर समस्या है।

चित्रः सौम्या शुक्ला

खत्म

सूरज ढल गया,
बच्चे थक गये।
सब अलविदा करते हैं,
और घर चले जाते हैं।
लम्बा दिन रहा है,
बहुत कुछ हुआ है।
खेल खेले गये हैं,
जीते गये हैं।
कहानियाँ पढ़ी गयी हैं,
सुनाई गयीं हैं।
लेकिन अब दिन खत्म,
उजाला खत्म।
इस दिन को कोई याद नहीं रखेगा,
यह मामूली दिन था
पर मैंने इस दिन को लिख दिया,
अपनी इस छोटी कविता में।
मैंने इस दिन की याद बना दी है।

- शामली, 12 वर्ष, कंडवानी,
पालमपुर, हिमाचलप्रदेश

गडरिए

प्रभात

वे शर्मीले होते हैं
इतने गरब गुमान रहित
कि कोई उनकी तरफ देखता है
तो वे दूसरी तरफ देखने लगते हैं
गर्दन घुमा लेते हैं, आँखें झुका लेते हैं
ज़मीन में देखने लगते हैं या आसमान में

वे निर्जन में रहते हैं
इंसानों की संगत के वे उतने अभ्यस्त नहीं हैं जितना प्रकृति की संगत के
उनका सारा जीवन रूंखों को देखने में गुज़रता है
रूंखों पर फूटती गोंद और खिलते फूलों को देखने में
और सुनने में
ये हवा के घासों में चलने की आवाज़ है
ये हवा के पेड़ों में चलने की आवाज़ है

चित्र : जगदीश जोशी

गडरिए
वे शर्मीले होते हैं
वे झाड़ों के सामने खुलते हैं
वे झिट्टियों के लाल-पीले बेरों से बतियाते हैं
वे बीहड़ के गड्ढों में पानी पीती हुई अपनी शकल से बतियाते हैं

वे आकाश में पैदल पैदल जा रही बारिश के पीछे पीछे
दूर तक जाते हैं अपने रेवड़ सहित
वे आकाश से पैदल पैदल आ रहे जाड़े के पीछे पीछे
वापस आते हैं अपने रेवड़ सहित

नक्षत्र उनकी भेड़ों को आकाशगंगा कहते हैं
आकाश कहता है –
गडरिए
चन्द्रमा हैं पृथ्वी पर चलते हुए

चित्र - शोभा घारे

रात थी। अँधेरा था। आकाश तारों से भरा था। लगा, तारों से आवाज़ आ रही है। झाड़ियों में जुगनू थे। झाड़ियों में आवाज़ थी। घने पेड़ों के बीच भी आवाज़ थी। जिसे हम सन्नाटा कहते हैं वो कहीं नहीं होता। जहाँ भी हवा है वहाँ ध्वनि है। और ध्वनि है। और ध्वनि सब कुछ में है। रात में धान के खेत में मैंने धान के पौधों की ध्वनि सुनी, पौधों के बढ़ने की ध्वनि। सब कुछ जो बढ़ रहा है, सब कुछ जो टूट रहा है – सब में अपनी-अपनी ध्वनि है।

एक बार डॉक्टर साहब ने अपना आला मेरे कानों में लगाया और उसकी चकली मेरे दिल पर रख दी। मैं घबरा गया। इतनी तेज़ धड़क, इतनी तेज़! मेरे दिल की आवाज़ थी यह। हर शरीर की अपनी आवाज़ होती है। यहाँ तक कि खटमल के शरीर की भी। उसके शरीर में भी तो हलचल होती है। खून दौड़ता है। धीरे-धीरे उगना, मुरझाना, धीरे-धीरे बढ़ना, सूखना – हर बार हर चीज़ आवाज़ करती है।

लेकिन मुझे सबसे ज़्यादा हैरत हुई जब पहली बार मैंने अपनी ही आवाज़ को अपनी ही तरफ लौटते पाया। पहाड़ से टकराकर लौटती प्रतिध्वनि। जैसे आवाज़ कोई गेंद हो, टकराकर लौटती। कुछ किलों में भी ऐसी जगहें होती हैं जहाँ तुम ताली बजाओ तो आवाज़ बढ़ती, गूँजती जाती है।

यह पूरा संसार ध्वनियों से भरा है। सुबह-सुबह चिड़ियों की आवाज़ें। दिन भर। उनकी दौड़ती-भागती आवाज़ें। और शाम को पेड़ों को चहचह से जकड़ती ये चिड़ियाँ रात भर सोती हैं। फिर भी उनके पंख हिलते हैं। फिर भी कभी-कभी तेज़ आवाज़ करती कोई चिड़िया आसमान के स्लेट पर अपनी लिखावट में कुछ लिखती है। और पेड़ लगातार बजते रहते हैं। तेज़ हवा में पूरा खुलकर। पन्ने उलटते। और जब हवा न हो तब भी जब धरती से दूर पानी आखिरी पत्तों तक चलता हुआ जाता है। बहुत बारीक आवाज़ से। कितना अच्छा होता अगर इन आवाज़ों को अपनी इच्छा से घटा-बढ़ा सकते जैसे टेलिविज़न की

ध्वनि

अरुण कमल

आवाज़ों को। और खूब ठण्ड में ये पेड़ काँपते भी हैं। जब मैं काँपता हूँ, तो दाँत बजते हैं। ऐसी आवाज़ और कहीं नहीं होती। फिर हँसी भी तो आवाज़ है। हँसने में हमारी पूरी देह वायलिन की तरह या तबले की तरह बजती है। हर जानवर, हर पक्षी की देह की आवाज़ अलग-अलग होती है। हर पेड़ के हवा में लहराने की आवाज़ भी अलग-अलग होती है।

और आदमी ने कितने-कितने वाद्ययंत्र बनाए। हवा में लाखों तरह से तरंगें पैदा कीं। सबसे सादी सुरीली बाँसुरी से लेकर पियानो तक। और इन ध्वनियों को सजाकर इतने-इतने राग और संगीत बनाए। ज़रा-सी साँस, एक फूँक माउथऑर्गन से कितनी ध्वनियाँ उठा देती है।

लेकिन मैं कभी-कभी ध्वनियों से परेशान हो जाता हूँ। इतना शोर, इतना बेमतलब हल्ला। सबसे मुश्किल है शान्ति। जैसे आज सबसे मुश्किल है घना अँधेरा, वैसे ही सबसे मुश्किल है शान्ति। केवल प्रकृति की आवाज़ें। पत्थरों पर टूटती लहरों की आवाज़। समुद्र का गर्जन। बादलों का गरजना। बिजलियों का कड़कना। तेज़ बौछारों की छटपट। एक तार बारिश का नाद। आँधी का लगातार दरवाज़े पीटना। हवा की साँय-साँय, पानी में छप-छप चलना किसी का। नदी में मछलियों की चपल ध्वनि। एक मेंढ़क की लचीली छलाँग। और गाय का शाम को रँभाना। गाँवों के झुण्ड के पैरों की धूल में धप-धप। मेड़ों का एक-दूसरे की देह रगड़ते मिट्टी पर चलना। और मेरी घड़ी की टिक-टिक। यही एक ध्वनि है जो बिलकुल प्राकृतिक लगती है।

कभी-कभी सोचता हूँ, कितना अच्छा हो अगर एक दिन के लिए सारी ध्वनियाँ ठहर जाएँ। जैसे मैं काँच की दीवार के इस पार और सारा संसार उस पार। एक पत्ता गिरे, गिरे, गिरता रहे और कोई आवाज़ मुझ तक न आए। एक बार मैंने क्रिकेट खेल टी.वी. पर देखते हुए आवाज़ बिलकुल बन्द कर दी। और थोड़ी ही देर में ऊब गया। सारा मज़ा जाता रहा। आवाज़ तो संसार का नमक है।

कभी-कभी सोचता हूँ। मुझे कौन-सी ध्वनि सबसे ज़्यादा पसन्द है? कभी-कभी लगता है आज सबसे ज़्यादा ध्वनियाँ तो मोबाइल फोन की हैं। लगता है कोई आ रहा है चलता हुआ। मुझे सबसे प्रिय है हवा के चलने की आवाज़। हवा जब साँस बनती है।

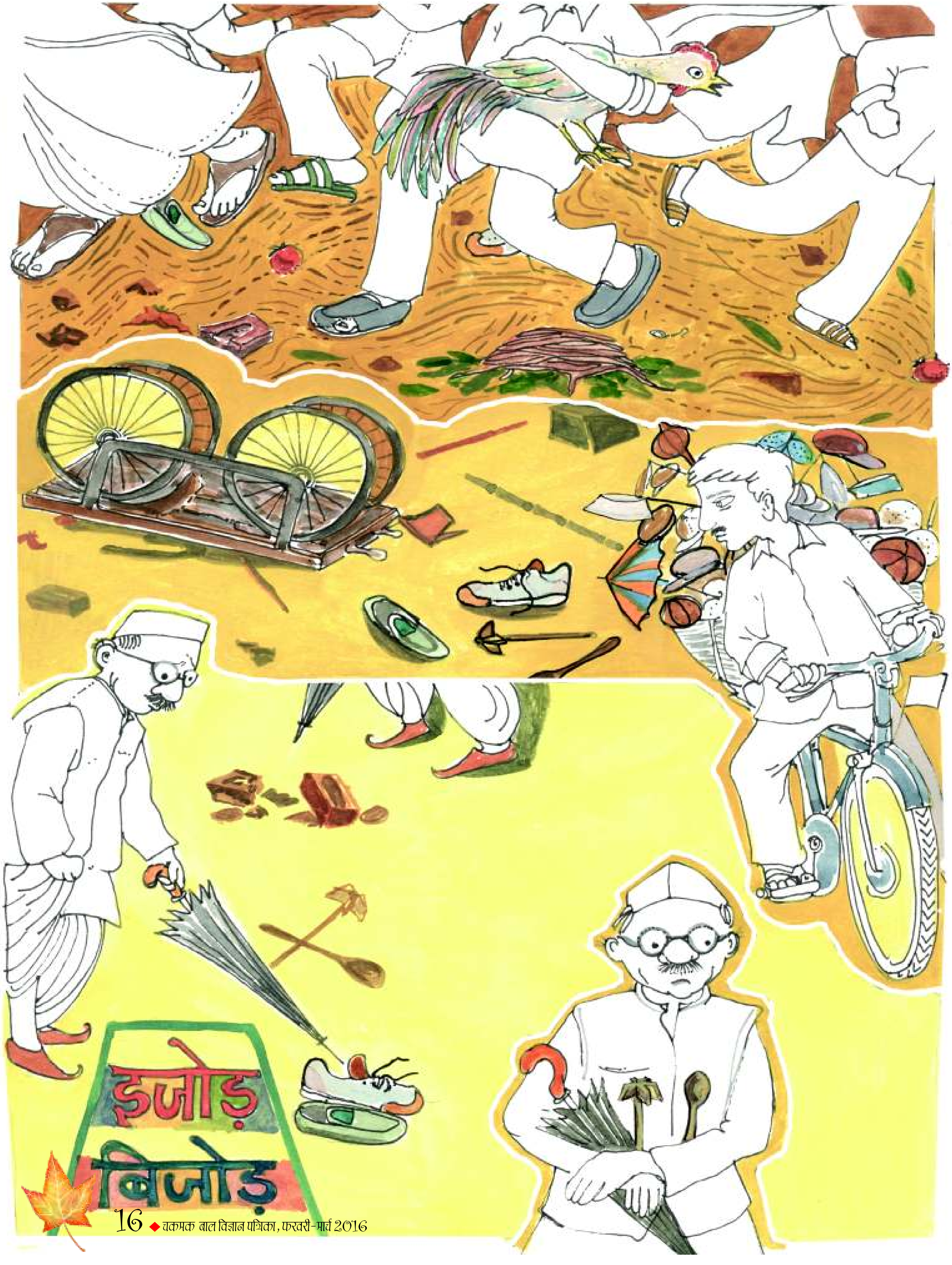
इजोड़
बिजोड़

कहानी - सुशील शुक्ल
चित्र - कनक शशि

लड़ाई का खेल

चन्दन यादव

कहावत "आ बैल मुझे मार" तो तुमने सुनी होगी! एक दिन जमील और दिनेश के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। दोनों एक ही मोहल्ले में रहते हैं और पास के सरकारी स्कूल में पाँचवीं में पढ़ते हैं। तो हुआ ये कि पिछली रात ही उन्होंने ज़ोरदार ढिशुमढिशुम से सनी फिल्म *बाहुबली* देखी थी। दोनों पर फिल्म का जादू ऐसा चढ़ा कि अगले दिन स्कूल की बेमज़ा कसरत के बाद भी उतरा नहीं।

जमील और दिनेश स्कूल से घर लौट रहे थे। जमील बोला, "पिक्चर में बहुत मज़ा आया। पर एक बात समझ नहीं आई, कटप्पाल ने बाहुबली को मारा क्यों?"

"छोड़ यार, जब दूसरा भाग आएगा तो पता चल ही जाएगा।" दिनेश ने सुझाया। "अपन तो फाइटिंग-फाइटिंग खेलते हैं।" जमील को जैसे इसी बात का इन्तज़ार था। उसने तुरन्त बस्ता पीठ से उतारकर सड़क पर रख दिया। दिनेश ने भी बस्ता उतारा और फाइटिंग के लिए तैयार हो गया। दोनों गुत्थमगुत्था हो गए और एक-दूसरे को नीचे गिराने के लिए ताकत लगाने लगे।

जहाँ पर ये लड़ाई चल रही थी, वो एक भरी-पूरी सड़क थी। इसके दोनों तरफ दुकानें और घर थे। दुकानों और घर के बाहर लोग जमा थे। इसी समय सड़क से बहुत-से लोग पैदल, साइकिल और मोटर साइकिल से आ-जा रहे थे। पहले दो लोगों की नज़र गुत्थमगुत्था हो रहे जमील और दिनेश पर पड़ी। इनमें से एक की नाक कुछ ज़्यादा ही लम्बी थी। हो सकता है ये हर कहीं अपनी नाक घुसा देने के अभ्यास का नतीजा हो। दूसरे सज्जन का माथा चौड़ा था। लम्बी नाकवाले ने दोनों के पास पहुँचकर अपनी नाक घुसाई, "चलो छोड़ो, लड़ाई करना बुरी बात है।" जमील ने सफाई देने की कोशिश की, "ममममगर हम तो...।" पर चौड़े माथेवाले ने जमील को अपनी बात पूरी नहीं करने दी। वो बोला, "हाँ बेटे, हमको पता है। इसने आपकी पेंसिल ले ली होगी। आखिर बच्चों की लड़ाई का और क्या कारण हो सकता

है।" जमील और दिनेश अपने दोनों मददगारों को हकबकाए से देख रहे थे। इसी बीच वहाँ चार और तमाशबीन आ जुटे। इनमें से एक बोला, "मिल-जुलकर रहने में ही भलाई है।" दूसरे ने समझाया, "लड़ाई से बरबादी ही होती है।" तीसरा बोला, "लड़ाई में जीतनेवाले को भी फायदा नहीं होता।"

भीड़ बढ़ती जा रही थी। सब लोग बढ़-चढ़कर लड़ाई के नुकसान गिनाने में जुटे थे। दिनेश और जमील को अपनी बात कहने का मौका ही नहीं मिल रहा था। वे भीड़ के बीचों-बीच फँसे थे और किसी तरह वहाँ से निकल जाना चाहते थे।

इसी भीड़ में एक सज्जन थे। उनके माथे पर तिलक और गले में गमछा लटका हुआ था। उन्होंने सबसे तेज़ आवाज़ में कहा, "लड़ाई से कायर लोग डरते हैं। शान्ति शान्ति करने से देश का सबसे ज़्यादा नुकसान हुआ है। दिनेश और जमील ने लड़ाई का जो खेल शुरू किया था, वो अब राष्ट्रीय समस्या बन चुका था। भीड़ के बहुत से लोगों को तिलकवाले सज्जन की बात सही लगी। अब लोग दो खेमों में बँट गए थे – लड़ाई की बुराई करनेवाले और लड़ाई की वकालत करनेवाले। दोनों खेमे चिल्ला-चिल्लाकर अपनी-अपनी बात कह रहे थे।

जमील और दिनेश मौका देखकर लोगों के पाँवों के बीच से किसी तरह खिसक लिए। भीड़ की आवाज़ें देर तक उनके कानों तक पहुँचती रही–

– लड़कर ही हमें अँग्रेज़ों से आज़ादी मिली है।

– लड़ाई में जीतनेवाले का भी कोई फायदा नहीं होता।

– लड़ते नहीं तो आज भी हम अँग्रेज़ों के गुलाम होते।

– लड़ाई से परिवार बरबाद हो जाते हैं।

– मिल-जुलकर रहने में ही भलाई है।

चित्रः तापोशी घोषाल

कविता

अगर सभी कुछ एक-सा होता

रमेश उपाध्याय

अगर सभी कुछ एक-सा होता
तो क्या होता?

सबकी शक्लें एक-सी होतीं
सबकी अक्लें एक-सी होतीं
सबके नाम एक-से होते
सबके काम एक-से होते

दुनिया में सब बच्चे होते
या सब के सब बूढ़े होते
या सब के सब सच्चे होते
या सब के सब झूठे होते

गाँव-शहर सब एक-से होते
सबके घर भी एक-से होते
खेत-बाग सब एक-से होते
पेड़-पहाड़ एक-से होते

आम और इमली एक-से होते
फूल और तितली एक-से होते
शेर और चूहे एक-से होते
घोड़े-गदहे एक-से होते

सबका पढ़ना एक-सा होता
सबका लिखना एक-सा होता
सबका होना एक-सा होता
सबका दिखना एक-सा होता

सबका खाना एक-सा होता
सबका पीना एक-सा होता
सबका मरना एक-सा होता
सबका जीना एक-सा होता

लेकिन

अगर सभी कुछ एक-सा होता
तो दुनिया में रंग न होते
काम-काज और खेल-कूद के
अपने-अपने ढंग न होते
हँसी न होती, खुशी न होती
मौज न होती, मज़ा न होता

चित्रः नीलेश गहलोत

अगर सभी कुछ एक-सा होता
तो दुनिया में चित्र न होते
नृत्य न होते, गीत न होते
नाटक और संगीत न होते
तब तो यह दुनिया ही न होती
तब तो यह जीवन ही न होता

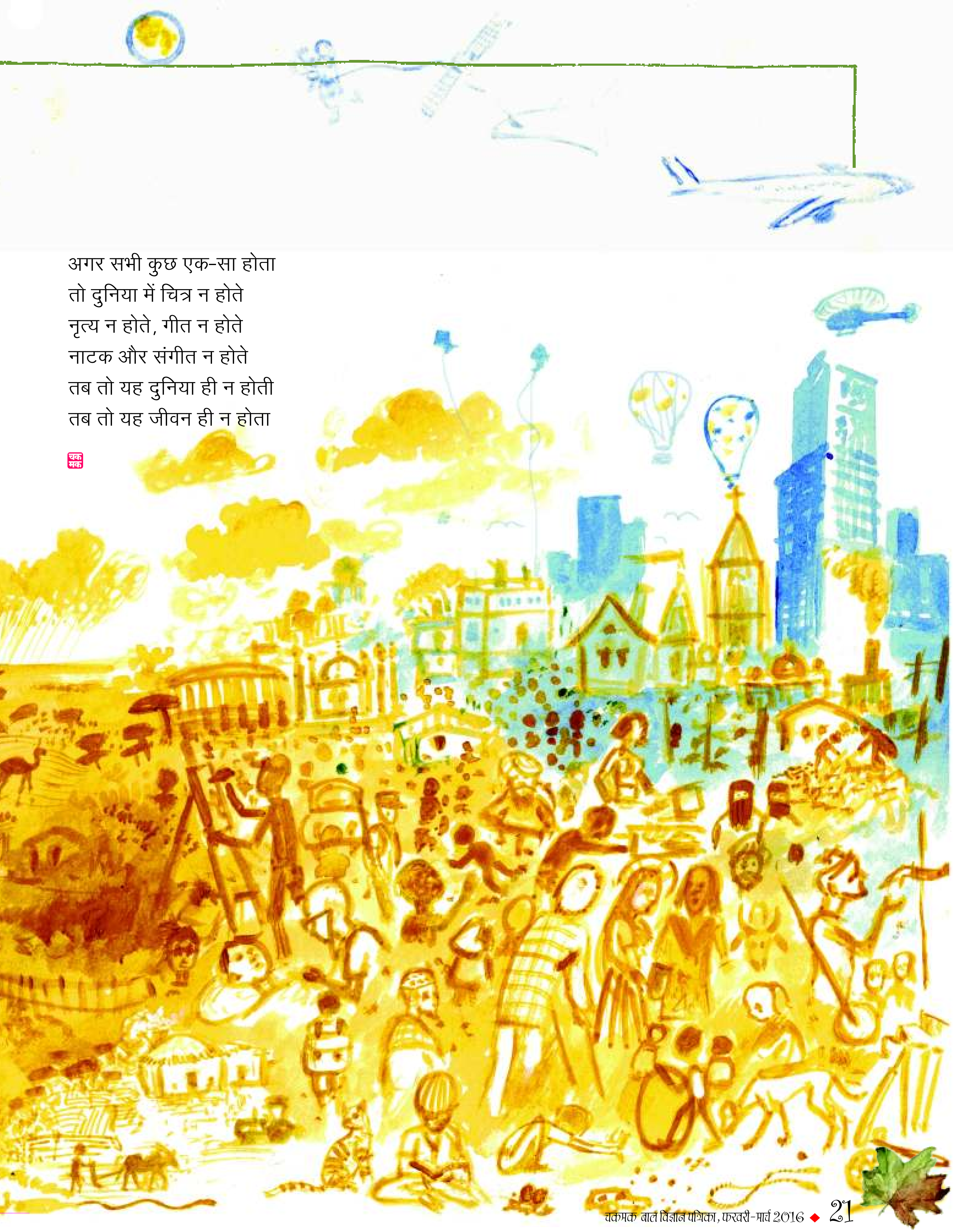

बातूनी

हरिशंकर परसाई

आदमी सुविधा खोजने में मारा जाता है। उस शाम अगर मैं खुद जाकर लिफाफा पोस्ट ऑफिस में छोड़ देता तो वह कष्ट न होता जो तभी से भुगत रहा हूँ।

उस शाम मुझे एक लिफाफा छोड़ना ज़रूरी था। मैं बाहर निकला। पोस्टऑफिस बन्द होने का समय हो रहा था। सामने से एक सज्जन (बाद में इन्हें मैंने कभी सज्जन नहीं कहा) साइकिल पर जाते दिखे। मैंने उन्हें रोककर कहा, "ज़रा एक लिफाफा लेकर इस कागज़ को उसमें रखकर, यह पता लिखकर डाक में छोड़ दीजिए।"

उन्होंने कहा, "सहर्ष।" बस उनके सहर्ष ने मेरा हर्ष तभी से जो छीना है, वह तो आज तक वापस नहीं मिला।

दूसरे दिन वे दिख गए, तो मैंने पूछा, "वह चिट्ठी डाल दी थी?" आप बताइए, इसका जवाब ज़्यादा से ज़्यादा कितना लम्बा हो सकता है? यही कि – जी हाँ साहब, मैंने आपकी चिट्ठी टिकट लगाकर और पता लिखकर पोस्टऑफिस के लाल लेटरबॉक्स में छोड़ दी थी। बस इससे ज़्यादा तो नहीं हो सकता।

पर उन्होंने यह जवाब दिया, "मैं पोस्टऑफिस पहुँचा साहब। क्या देखता हूँ कि पोस्टऑफिस बन्द हो चुका है। अब मैं बड़ा परेशान। मैं कहूँ कि करूँ तो क्या करूँ! आपकी चिट्ठी ज़रूरी है। आपने पहली बार तो कोई काम बताया। इतने दिनों से आप यहाँ रहते हैं, पर पहली बार सेवा का कोई काम बताया। मैंने कहा चाहे आकाश टूट जाए और पृथ्वी फट पड़े, पर आपका लिफाफा ज़रूर डालूँगा। तो साहब मैं बाहर निकला। अब मैं कहूँ कि जाऊँ तो कहाँ जाऊँ। इतने में साहब, मेरी नज़र पड़ी साहनी मेडिकल स्टोर पर। वहाँ साहनी बैठा था। मैं वहाँ गया। साहनी मेरा कई साल से दोस्त है। आप नहीं जानते, उसके पिता मेरे पिता के बड़े दोस्त थे। बाद में उसके पिता को एक दिन दिल का दौरा पड़ा और वे घण्टे भर में ही मर गए। ये सब आजकल दिल की बीमारी का भी बड़ा फैशन चल पड़ा है। तो मैंने कहा, 'यार साहनी, लिफाफा दे।' उसने कहा, 'लिफाफा तो नहीं है, टिकट है।' मैंने कहा, 'ला टिकट ही दे।' मैंने साहब टिकट तो हाथ में

चित्रः मयूख घोष

कर ली। अब लिफाफा? मैं बाहर खड़ा-खड़ा कहूँ कि लिफाफा कहाँ से लाऊँ? अब मुझे घबराहट होने लगी। आखिरी डाक निकलने का वक्त हो रहा था। लिफाफा नहीं गया तो क्या होगा? हे भगवान, तू ही रास्ता बता। मैं तो इस गाड़ी में लिफाफा छोड़कर ही रहूँगा चाहे मुझे स्टेशन ही क्यों न जाना पड़े। गाड़ी चल दी होगी, तो उसे रोककर लिफाफा छोड़ूँगा पर लिफाफा मिले कहाँ? अचानक साहब मुझे राजू दिखा। वही राजू जो किताबों का एजेण्ट है। उसके हाथ में बस्ता था। मैंने सोचा, इसके पास ज़रूर लिफाफा होगा। मैंने कहा, 'यार राजू, एक लिफाफा दे।' उसने कहा, 'यार लिफाफा तो है पर उस पर फर्म का नाम छपा है।' मैंने कहा, 'कोई बात नहीं। मैं उसे काट दूँगा।' मैंने लिफाफा ले लिया। जेब में हाथ लगाया तो कलम नहीं थी। मैंने कहा, 'अजीब बेवकूफ हूँ। काम ले लिया और कलम लाया नहीं।' भाग्य से राजू के पास पेन था। मैंने कहा, 'यार पेन दे।' और उसने साहब, फौरन निकाल दे दिया। राजू में इतनी बात अच्छी है। उसके पास कोई चीज़ हो तो फौरन दे देता है। अब मैं कहूँ कि काहे पर रखकर लिखूँ। मैंने झट उसका बस्ता लिया। उस पर लिफाफा रखा, उसकी फर्म का नाम काटा और पता लिखा और साहब, मैं भागा पोस्टऑफिस की तरफ। अब संयोग देखिए साहब, कि पहुँचा हूँ कि डाकिया चिट्ठियाँ निकालकर लेटरबॉक्स बन्द कर रहा था। मैंने कहा, 'भाई साहब, यह चिट्ठी भी ज़रूरी है। इसे डाक में शामिल कर लीजिए।' वह भला आदमी था। उसने लिफाफा ले लिया। तब साहब, मेरा मन हलका हुआ।"

यह मैंने बहुत संक्षेप में लिखा है। उन्होंने लगभग आधा घण्टा इस विवरण में लिया।

मैंने कसम खाई कि कभी इनसे कोई काम नहीं कराऊँगा। मगर जो कर चुका था, उसका फल तो

भुगतना ही था। मेरा काम करके उन्होंने मेरे ऊपर हमेशा के लिए अधिकार जमा लिया था। रास्ते में उनका घर पड़ता था। मैं निकलता और उन्हें दिख जाता, तो वे बहुत खुश होकर मुझसे पूछते, "कहाँ जा रहे हैं?"

मैं नहीं समझ पाता कि आमतौर पर लोग क्यों पूछते हैं कि आप कहाँ जा रहे हैं? वे क्या पुलिस के आदमी हैं या खुफिया विभाग के हैं या चाचा होते हैं कि जानना चाहते हैं कि तुम कहाँ जा रहे हो? यह असल में आदमी को रोककर बात करने की भूमिका है। जिसे जल्दी जाना है, वह भी होशियारी करता है, कहता है, "कहीं नहीं, ऐसे ही।" और आगे बढ़ जाता है।

मैं जब रुक जाता और कहता, "यों ही ज़रा सिविल सर्जन से मिलने जा रहा हूँ।" बस वे मुझे पकड़ लेते, "अच्छा, डॉ. गुप्ता से।

(शेष भाग पेज 52 पर)

चकमक कविता कार्ड

पतंग

आओ! आओ!
पतंग बनाओ
आसमान से ले लो
थोड़ा कागज़ नीला
बाँस वनों से
ठड्डे और कमानी ले लो
आटा थोड़ा माँ दे देगी
नदियों से कुछ पानी ले लो।
बाँस छीलकर मोड़ो उसको
लेई लगाकर जोड़ो सबको।
दाएँ रखकर सूरज चन्दा
बाएँ पर तारे चिपकाओ
आसमान जब खुला खुला हो
और हवा हो जब मस्ती में
गूँथ गूँथकर सपनों की इक लम्बी डोरी
दूर गगन में इसे उड़ाओ
लिखकर मन की बातें सारी
तारों को पाती भिजवाओ
आओ आओ पतंग उड़ाओ

- राजेश जोशी

चित्रः सुजाशा दासगुप्ता

चकमक :0755- 4252927 9425010115 chakmak@eklavya.in

कविता कार्ड के चार गुच्छे।
एक गुच्छे में बारह कविताएँ।
एक गुच्छे की कीमत है सिर्फ पचास रुपए।

पढ़ो और फिर चाहो तो अपने दोस्त को
इसी कार्ड के दूसरी तरफ
एक चिट्ठी लिखकर भेज दो।

इन्हें मँगाने के लिए तुम चकमक के पते पर लिख सकते हो।
या हमें फोन कर सकते हो। या चाहो तो सीधे ऑनलाइन मँगा लो -

http://www.eklavya.in/pitara/chakmak_kavita_cards

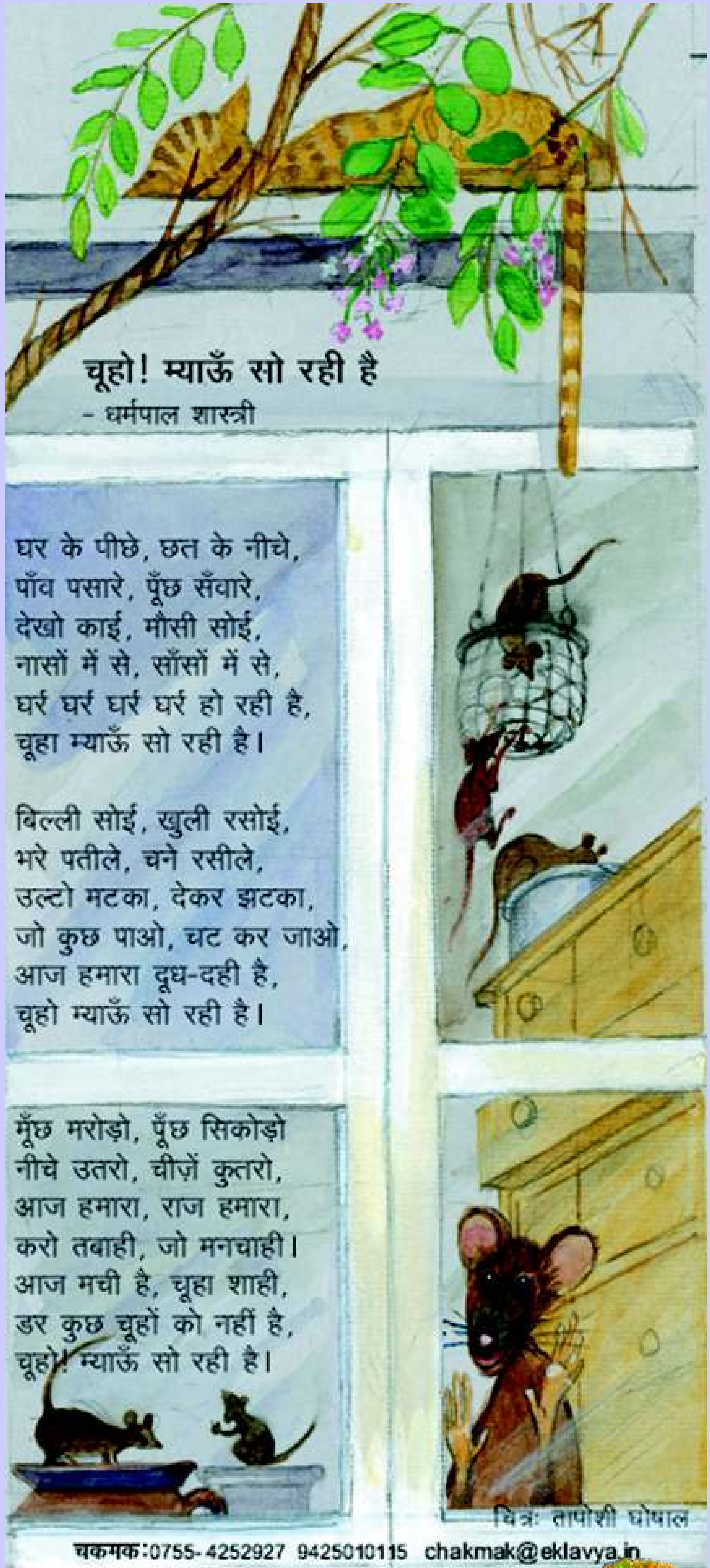

मेरे पड़ोसी का जाना...

अजय गाडीकर

अपनी आरामगाह में मेरा पड़ोसी

वह एक उल्लू (बार्न आउल) था – मेरा पड़ोसी। इसने मेरे पड़ोसी की खिड़की को अपना आशियाना बना रक्खा था। यह पूरा दिन या तो बैठा रहता या फिर सोता रहता। उल्लू निशाचर है। उसकी दिनचर्या बाकी पक्षियों से अलग होती है। जिस वक्त बाकी पक्षी जागकर चहचहाते हुए अपने नए दिन की तैयारी कर रहे होते ठीक उसी समय यह रात की पाली पूरी कर अपने ठिकाने पर कदम रखता।

इसके रहने की जगह भी ऐसी कमाल थी कि मेरे बेटे के कमरे से तो यह साफ नज़र आता लेकिन किसी अन्य जगह या कोने से इसे देखना सम्भव नहीं था। वह अकसर खिड़की के अधखुले पल्ले पर बैठा नज़र आता। खिड़की के दो फुट ऊपर प्लास्टिक का एक छज्जा था जो खिड़की को बारिश में भीगने नहीं देता था। इस छज्जे ने उल्लू के आराम का पूरा बन्दोबस्त कर दिया था। यह पूरा दिन वहाँ बैठकर या सोकर आराम करता। उल्लू की रिहाइश मेरे बेटे के कमरे से बमुश्किल आठ फीट की दूरी पर थी।

बार्न उल्लू (वैज्ञानिक नाम: टाइटो अल्बा)

सुबह आने के बाद वह सबसे पहले पूरे इलाके का जायज़ा लेता। तकरीबन आधे घण्टे तक अपने पंख संवारता और अपनी चोंच से अपने पंजे साफ करता। और फिर जम्हाई लेता हुआ धीरे-से सो जाता। उसकी नींद बहुत गहरी नहीं थी। आसपास ज़रा-सा खटका हुआ नहीं कि वह जाग जाता। अपनी आँखें खोलकर एक बार फिर इलाके का जायज़ा लेता और अगर खतरा नहीं मिला तो वह दोबारा नींद के हवाले हो जाता।

उसका पूरा दिन सोने में बीतता। हाँ, एक-दो बार वह करवट ज़रूर बदलता। शाम ही उसका सबेरा थी। शाम को वह जागता और मानो बाहर निकलने की पूरी तैयारी करता – फिर से अपने पंख सँवारता और पंजों की सफाई करता। उसे ऐसा करते देखकर बहुत अच्छा लगता। शाम ढलने के साथ ही तीखी आवाज़ निकालते हुए वह अपनी जगह से फुर्र हो जाता।

हमारी नज़रें कुछ देर तक उसका पीछा करतीं। वह थोड़ी देर पास के पेड़ पर बैठता और फिर खाने की तलाश में उड़ जाता।

एक दिन उसके जाने के बाद उसके बसेरे के नीचे मैंने छोटी-छोटी गोलीनुमा चीज़ें देखीं। ये गोलियाँ अकसर गहरे भूरे से काले रंग की होती थीं। इनमें बिना पचा हुआ खाना होता जो वह उगलता था। मैं उनकी जाँच-पड़ताल में लग गया। मैं उन्हें फोड़कर देखता कि उसने पिछले दिन क्या खाया था।

ज़्यादातर मौकों पर तो यह पता लगा पाना मुश्किल होता क्योंकि हमें केवल पंख, हड्डियाँ, नाखून और चिड़ियों व जानवरों के दाँत आदि ही मिलते। पर कुछ दिनों के बाद मैं यह पता लगा पाया कि वे गिलहरियों के दाँत थे। कई बार चूहों के दाँत और कबूतर के पंख भी मिले। यानी उसके भोजन में गिलहरियाँ, चूहे और चिड़ियाँ शामिल थीं। उसी जगह पर रोज़ सफेद बीट गिरी मिलती। इसका सफेद रंग कैल्शियम की अधिकता की वजह से था। यह सिलसिला दो महीने तक चलता रहा।

एक दिन अचानक देर शाम इन्दौर चिड़ियाघर से मुझे फोन आया कि कोई व्यक्ति एक घायल उल्लू को वहाँ लाया है और वे चाहते थे कि मैं उस उल्लू की प्रजाति की पहचान करूँ। उल्लू को वन्यजीव अधिनियम की अनुसूची चार में रखा गया है इसलिए अधिकारी लोग उल्लुओं से जुड़ी घटनाओं-दुर्घटनाओं में अतिरिक्त सावधानी बरतते हैं।

अगली सुबह मैं चिड़ियाघर पहुँचा। उल्लू बुरी तरह घायल था और उड़ पाने के काबिल नहीं बचा था। वह अपने पंखों के बल ज़मीन पर पड़ा था – एकदम असहाय।

मैं एकदम पहचान गया। वह एक बार्न उल्लू है। मैंने उनसे कहा कि यह शहर के किसी हरे-भरे इलाके में रहता है। अचानक मुझे ख्याल आया कि कहीं यह हमारा पड़ोसी ही तो नहीं! आज सुबह मैं देखना भूल गया था कि वो खिड़की पर था या नहीं। मैं बेचैन हो गया। शाम करीबन तीन बजे जब मेरा बेटा स्कूल से लौटा तो उसने बताया कि वह उल्लू अपने ठिकाने पर नहीं है। चूँकि सभी बार्न उल्लू एक जैसे दिखते हैं इसलिए मैं निश्चित तौर पर नहीं कह सकता कि यह वही उल्लू था लेकिन उसका अपने ठिकाने पर नहीं होना और एक बार्न उल्लू का इतनी बुरी स्थिति में मिलना मुझे परेशान किए हुए था।

चिड़ियाघर प्रशासन ने चिकित्सकों के साथ मिलकर उसे बचाने की पूरी कोशिश की लेकिन बचा न पाए। उस दिन के बाद से हमें हमारे घर के पीछे की खिड़कीवाला उल्लू भी नहीं दिखा। इस घटना को बीते नौ महीने हो चुके हैं। वह जगह अब भी खाली है। पर हमें उम्मीद है कि एक दिन वह भर जाएगी और हमें अपना पुराना पड़ोसी फिर मिल जाएगा।

घायल उल्लू

भाषा भौंक से अर्थ आँख से

दिलीप चिंचालकर

नुक्कड़ पर हरपर रेवड़ी (आँवले जैसे चरपरे स्वादवाले फल का पेड़) की झिलमिलाती छाँव में वे चारों पगुराते खड़े थे। चार मुसटंडे साँड। चार गाएँ एक साथ खड़ी होतीं तो कोई अचरज नहीं होता। बल्कि, वे तो होती ही हैं। घोड़े, ऊँट, गधे भी एक साथ मित्रवत पाए जाते हैं। मगर इन खुर्राट प्राणियों को यूँ एक साथ दिखना समझ से परे था। पता नहीं उनमें क्या स्नेह-मेह झर रहा था। मुझे लगा काश मैं साँडों की बोली समझ पाता! वैसे उनके पास बोलने के लिए एक ही तो शब्द होता है – हूँ (हुंकार का)। मुझे विश्वास है कि उसके अनेक अर्थ होते होंगे। और एक हम हैं कि उनके लिए हमारी ज़ुबान पर एक ही शब्द है – डूर्रर, यानी चलो, आगे बढ़ो।

बचपन में ऐसे कई पक्षियों के बारे में पढ़ा है, जैसे उल्लू या तोतों और मैनाओं के जोड़े। ये रात को फुर्सत में बैठे-बैठे इधर-उधर की गपशप करते। मसलन चोरों की, राजा और रानी की, षड्यंत्र रचते मंत्रियों की। और पेड़ के नीचे नींद न आ रहे मुसाफिर उनकी बातें सुन सावधान हो जाते। तब मुझे लगता कि क्या ही अच्छा होता कि मुझे पक्षियों की बोली समझ में आती। बड़े होने पर मैंने परिन्दों को काफी सुना है। मगर अब मेरी दिलचस्पी उनकी गायकी में ज़्यादा है। उनकी बन्दिशों (गीत रचनाओं) में नहीं। कि वे कान्हा-कान्हा गा रहे हैं या दाना-दाना। हाँ, कभी-कभी उनके आरोहों-अवरोहों में सा प आ या – सा प आ या स्पष्ट सुनाई दे जाता है।

स्कूल में अगली जमात में पहुँचा तो बिलकुल ही नई भाषाओं से साबका पड़ा – फ्रांसिसी और जर्मन। इन्हें पहले कभी बोला-सुना नहीं था मगर इन्हें सीखने पर बड़ा ज़ोर था। उनसे पार पाना बड़ा ही कठिन हो चला था। तब मुझे ख्याल आया कि क्यों नहीं हम गिलहरियों की भाषा सीखते हैं? पेड़ों पर उलटे लटके वे घण्टों चिड़िक-चिड़िक करती रहती हैं। कुछ तो होगा जो वे हमें बताना चाह रही होंगी। मेरे मझौले शहर में जितने विदेशी ज़ुबानें बोलनेवाले होंगे उनसे कई गुना अधिक गिलहरियाँ, परिन्दे और मवेशी होंगे। फिर इनसे हमारा उठते-बैठते का वास्ता जो है!

किस्सों-कहानियोंवाली अनोखी बोली सीखने की ख्वाहिश आखिर पूरी हुई। जब देशी नस्ल की बीना और काकुल, रैना नाम की दो अल्सेशियन बच्चियाँ हमारे परिवार में आईं। पहले तो हमने पूरे उत्साह के साथ उन्हें मराठी और अँग्रेज़ी सिखाई (जो वे काफी हद तक सीख भी गईं) लेकिन वे हमसे बोलती तो अपनी ज़ुबान में ही थीं। पहले हम सोचते थे कि उनकी बोली में केवल एक ही शब्द है "भौ" पर धीरे-धीरे समझ में आया कि अ आ इ ई की तरह उनके पास भी भु भू भो भौ, स्वरों में उं ऊँ और संयुक्ताक्षरों में टयाऊँ क्याऊँ वगैरह भी हैं। कई शब्द वे मौके के हिसाब से गढ़ लेती हैं। जैसे काकुल जब बाहर रह जाती थी तो दरवाज़ा खुलवाने के लिए वह "वोक्क" की पुकार करती थी। जिसके मायने ये कि हम बाहर रह गईं हैं, किवाड़ खोलो। पर ऐसा नहीं कि बाहर जाते समय दरवाज़ा खुलवाने के लिए भी वह वही पुकार करे। नहीं, तब वह "हाँऊँ" की आवाज़ निकालती। जब और

पकौड़े चाहिए हों तो “हूँऊँ” कहती। इसके अलावा कानों को कम-ज़्यादा मोड़कर, गिराकर वह अलग-अलग बातें कहती। दुम को आड़ा या गोल-गोल घुमाना, उसके सिरे को थोड़ा-थोड़ा हिलाने के अलग अर्थ निकलते। दस वर्ष की होते-होते जब वह हमारे कोई साढ़े तीन सौ शब्द सीख गई, हम भी उसके इतने शब्द तो सीख ही गए जिससे आपस में मज़े से बातचीत हो सके। फिर भी यह कहूँगा कि ये शब्द सतही ही थे।

चाबियों के छल्ले की आवाज़, चुटकी, सीटी इन सब इशारों के अर्थ काकुल और रैना ने खूब बाँध रखे थे। अगले पंजों पर थूथन टिकाए घर में हमारी हलचल पर ध्यान रखना उन दोनों के शगल थे। सुबह-दोपहर-शाम-रात हमें देखते-देखते वे खूब जानने लगी थीं कि हम कब क्या करेंगे। वे हमसे आँखों से आँखें मिलाकर संवाद करतीं। यदि मैं ज़रा भी असमंजस में होता तो उनकी आँखें जैसे पूछतीं, “क्यों, चलें?” “अब क्या करना है?” “ठीक है?” जवाब में मेरी आँखें झपकाने, हिलाने, भींचने से तय कर लेती कि अगली चाल क्या होगी। और वे हमेशा सही होतीं।

ये अल्सेशियन बेटियाँ अपनी खुशी-नाखुशी, दुख-उदासी, पसन्द-नापसन्द, हम पर बड़ी सफाई से ज़ाहिर कर सकती थीं। केवल आँखों से, बगैर शब्दों के। उनकी इस भाषा में शब्दों की ध्वनियाँ थीं मगर व्याकरण नहीं, बस भावना काम करती थी।

काकुल और रैना हमारे परिवार में अपने तय दिन बिताकर चली गईं। सोलह सालों में उन्होंने हमें एक अनोखी भाषा सिखा दी। ऐसी भाषा जिसमें शब्दों से परे भी अर्थ होते हैं। इससे हम उनकी जाति के ही नहीं कई तरह के प्राणियों से टूटी-फूटी बोली में ही सही बातचीत का कुछ सिलसिला शुरू कर सकते हैं। ऐसा नहीं कि हम एक चौथी भाषा सीखकर भाषाविद बन गए हैं। बल्कि हम खुश हैं कि अब हम राह चलते आवारा कुत्तों से बातें करने लगे हैं। उन्हें देखने-पूछने लगे हैं। राह चलते कई मित्र खुश हो दुम हिलाते हुए मिलने चले आते हैं। हमें लग रहा है कि हमारा मन मोम का हो चला है।

जानवरों की तो आँखें बोलती हैं। खास कर गायों और बैलों की। इनकी भाषा सीखने का बड़ा मन है। परन्तु इन्हें पालना अब शायद मुझसे नहीं हो सकेगा। देखता हूँ, काकुल-रैना की भाषा के ज़रिए गायों तक पहुँच पाता हूँ क्या! फिर साँडों का संवाद रहस्य नहीं रहेगा।

चित्रः दिलीप चिंचालकर

अनन्या खरे, तेरह वर्ष, भोपाल

ज़ीरो

यमुना केसवानी

मैं कलकत्ता के एक अँग्रेज़ी माध्यम स्कूल में हिन्दी पढ़ाती हूँ। इसलिए मुझे खूब सारे बच्चों से मिलने-जुलने उन्हें देखने-सुनने के मौके मिलते रहते हैं। और इस मिलने-जुलने में कुछ किस्से याद रह जाते हैं जैसे यह किस्सा...

हमारे स्कूल में आठवीं कक्षा के बच्चे हिन्दी को तृतीय भाषा के रूप में पढ़ते हैं। हिन्दी का सप्ताह में एक पीरियड होता है। कुछ दिन पहले एक कक्षा में मैंने एक कविता पढ़ाई और क्लास खत्म होने पर कहा कि अगली क्लास में सब इस कविता को याद करके आएँ और साफ-सुन्दर अक्षरों में लिखकर दिखाएँ।

किसी वजह से लगातार दो हफ्ते तक मुझे उस कक्षा में जाने का मौका नहीं मिला। तीसरे हफ्ते जब मैं उस क्लास में गई तो मैं भूल चुकी थी कि मैंने बच्चों को कविता याद करने को कहा था। जब मैंने कुछ और पढ़ाना शुरू किया तो दो-एक बच्चों ने कवितावाली बात याद दिलाई। मैंने कहा, "फिर ठीक है। सभी किताब से बिना देखे कविता लिखकर दिखाएँ।" कुछ बच्चों ने ना-नुकुर की पर फिर सबने लिखना शुरू किया। मैंने देखा ज़्यादातर बच्चे एक-दूसरे की ताक-झाँक कर लिख रहे थे। कई बच्चे किताब से नकल कर रहे थे। इस तरह जन-गण अपने मन की किए जा रहा था। मैं चुपचाप देखती रही।

जब सब बच्चे अपनी कॉपियाँ मुझे दिखाने लाने लगे तब मुझे एक बात सूझी। मैंने उन्हें वापस अपनी जगह बैठने को कहा और यह भी कि पूरी क्लास जानती है कि यह लिखना किस तरह हुआ है। इसलिए अच्छा है कि सब अपने लिखे को खुद ही जाँचें। इसके लिए कुल दस नम्बर तय हुए। हरेक को अपने नम्बर खुद तय करने थे।

थोड़ी देर में सबने कॉपियाँ जमा कर दीं। मैं एक-एक कर देखने लगी। जिसने कविता की तीन पंक्तियाँ लिखी थीं उसने खुद को तीन नम्बर दिए और चार पंक्तियोंवाले ने चार। जिसने पूरी कविता लिखी थी उसने खुद को पूरे दस नम्बर दिए थे। देखते-देखते मेरी निगाह एक बच्चे की कॉपी पर टिक गई जिसने पूरी कविता साफ-साफ और सही-सही लिखी थी लेकिन खुद को शून्य नम्बर दिया था।

मैंने उसे पास बुलाया और पूछा कि उसने ऐसा क्यों किया। वह थोड़ी देर नज़रें झुकाए खड़ा रहा फिर धीरे-से बोला, "असल में पूरी कविता किताब से देखकर लिखी है।" और मैं देर तक उसे ही देखती रही।

D77833 दिनांक 11-1-2016

कहानियों का शहर

रुकमणी बनर्जी

चित्रः बिन्दिया थापर

मीमी एक छोटी-सी लड़की, भीड़-भाड़वाले एक शहर में रहती थी। उसे कहानियाँ बहुत पसन्द थीं पर उसे कहानियाँ सुनाने के लिए किसी के पास समय नहीं था। मीमी ने माँ से कहानी सुनाने के लिए कहा तो माँ बोलीं, "मुझे काम करना है।" पापा बोले, "मैं तो अखबार पढ़ रहा हूँ।" उसका भाई कहने लगा, "देख नहीं रही हो मैं क्रिकेट खेल रहा हूँ।" उसके पड़ोसी ने कहा, "मुझे कुछ सामान खरीदने बाज़ार जाना है।"

स्कूल में टीचर ने कहा, "नहीं नहीं, पहले जोड़-घटाने के कुछ सवाल हल करो।" मीमी ने जिससे भी कहानियाँ सुनाने की बात कही किसी के पास मीमी के लिए समय नहीं था। कहानियों के लिए तो बिलकुल नहीं।

एक दिन एक दीदी मीमी के स्कूल आईं। वे बच्चों से तो बड़ी थीं लेकिन टीचर से छोटी ही थीं। दुबली पतली-सी, चमकीली आँखें। चेहरे पर हलकी-सी मुस्कान। दीदी रोज़ स्कूल आने लगीं। और बच्चों की दोस्त बन गईं और टीचर की भी।

मीमी मन ही मन सोचती, "क्या दीदी को कहानियाँ आती हैं?" लेकिन वह पूछने से हिचकिचा रही थी। एक दिन झिझकते हुए वह दीदी के पास गई और बोली, "क्या आपके पास थोड़ा-सा समय है? क्या आप मुझे कहानी सुनाएँगी?" दीदी ने उसे ध्यान से देखा सिर से पैर तक, पैर से सिर तक। सीधे मीमी की आँखों में। फिर मुस्कराई, "हाँ, हाँ क्यों नहीं? तुम्हें कैसी कहानियाँ पसन्द हैं?"

मीमी थोड़ा घबराई।

उससे कभी किसी ने ऐसा सवाल नहीं किया था। सोचते हुए उसकी आँखें गोल हुईं, "क्या आप शेर की कहानी सुना सकती हैं?"

दीदी स्कूल के बरामदे में बैठ गईं। उन्होंने एक छोटे-से शेर के बारे में कहानी शुरू की जो जंगल में घूमते-घूमते खो गया था। शाम होनेवाली थी और वह परेशान था। मीमी चुपचाप सुन रही थी। उसे सिर्फ दीदी की आवाज़ सुनाई दे रही थी। उसे लगा जंगल के विशाल पेड़ों की टहनियाँ हवा में हिल रही हैं। ऊँची-ऊँची घास सरसरा रही है। नन्हे शेर के बाल मुलायम थे।

मीमी के दोस्त आसपास खेल रहे थे। थोड़ी ही देर में मीमी की पूरी क्लास घेरा बनाकर खड़ी हो गई। वो बड़े ध्यान से सुन रहे थे और और सुनाने की ज़िद कर रहे थे। सब जान गए थे कि दीदी को बहुत-सी कहानियाँ आती हैं।

बन्दरों और चिड़ियों की, भयानक कुत्तों की, चालाक बिल्लियों की, मछलियों की, नदियों और गहरे समुद्रों की कहानियाँ।

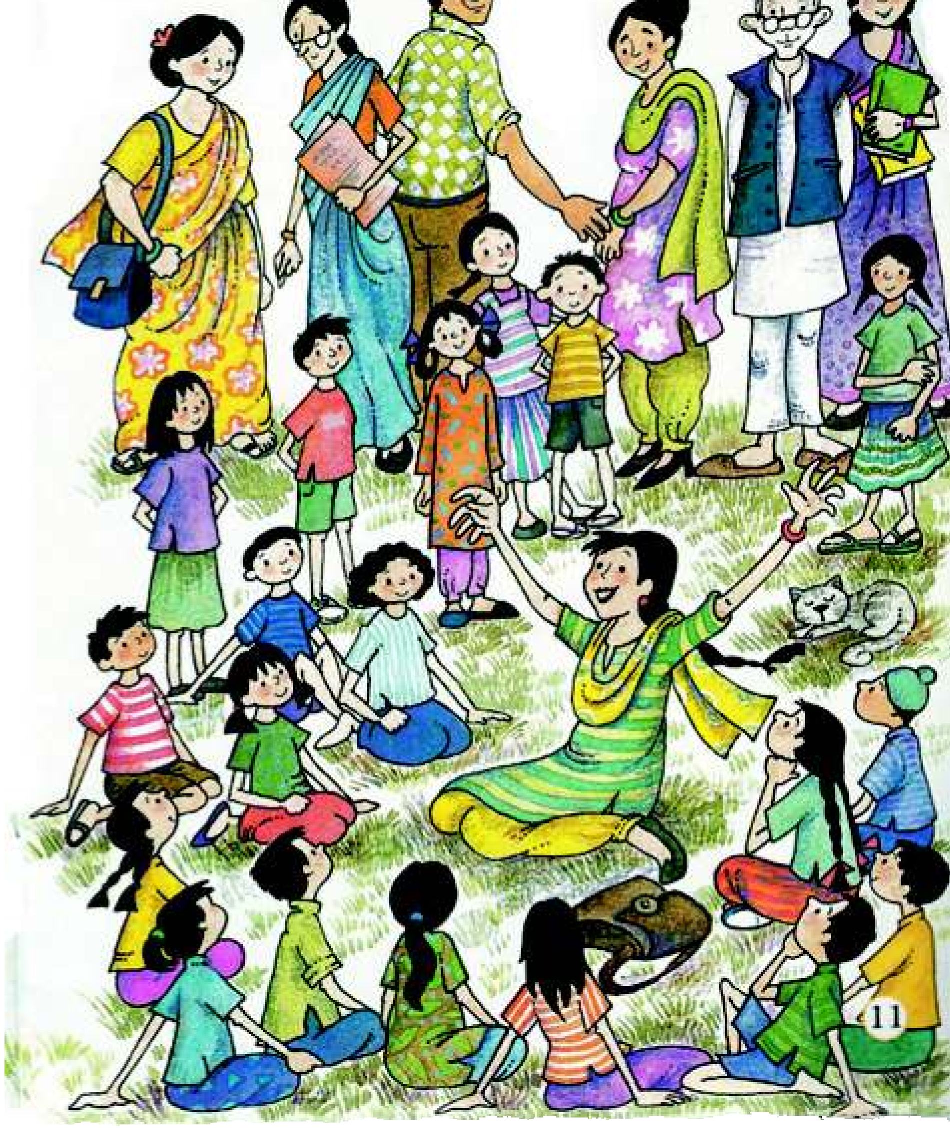

ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, हरी-भरी घाटियों की, रहस्य-रोमाँच की कहानियाँ। भूतों और राक्षसों की, राजाओं और सुन्दर रानियों की। बड़े-बड़े शहरों और छोटे-छोटे गाँवों में रहनेवाले बच्चों की कहानियाँ। जब डर लगे तब के लिए कहानियाँ। जब दुख हो तब आँसू पोंछनेवाली कहानियाँ।

ढेरों कहानियाँ...

अब मीमी और उसके दोस्त रोज़ दीदी के पास बैठ जाते थे। और शुरू हो जाती थी कहानियाँ। दूसरे बच्चे भी आने लगे। स्कूल के टीचर आते, पास के स्कूल के बच्चे आते। जो बच्चे स्कूल में नहीं थे वे भी आने लगे। जिन बच्चों ने पढ़ना छोड़ दिया था वे भी आते। जो अभी बहुत छोटे थे और स्कूल जाने लायक नहीं थे, वे भी आते।

जिनको जगह मिल जाती, वे बैठ जाते। कुछ खड़े-खड़े ही कहानियाँ सुनाते रहते। जो अभी ज़रा छोटे थे, वे पेट के बल लेट जाते। कोहनियों के सहारे चेहरा टिकाकर चुपचाप सुनते रहते।

कहानियाँ सुन-सुनकर उन्हें पता चला, एक-दूसरे को कहानियाँ कैसे सुनाई जाती हैं। उन्होंने जाना कैसे कहानियाँ गढ़ें, कहानियाँ कैसे बुनें। कहानियों को मिलाकर कैसे नई कहानियाँ बनाएँ। और नीले आसमान में जैसे पतंग उड़ाते हैं, वैसे कल्पना की डोर पर कैसे कहानियाँ उड़ाएँ।

कुछ ही दिनों में पूरे शहर में कहानियाँ फैल गईं। माँ ने काम बन्द कर दिया।

टीचरों ने गणित की किताबें रख दीं और पड़ोसी ने खरीददारी नहीं की। बड़े भाइयों ने क्रिकेट खेलना बन्द कर दिया।

छोटी बहनें रस्सी कूदना भूल गईं। सभी कहानियाँ सुन रहे थे और सुना रहे थे!

सब्ज़ीवाले ने सब्ज़ी बेचनी बन्द कर दी। दूधवाले ने दूध देना बन्द कर दिया। पानवाले ने अपनी सारी पान-सुपारी किनारे रख दी। उन लोगों ने एक-दूसरे को कहानियाँ सुनानी शुरू कर दीं। बस ड्राइवर अपनी सीट पर से कूदकर आ गया और सुनने लगा।

बस के सारे यात्रियों के साथ बैठकर उन्हें अपनी कहानियाँ सुनाने की ऐसी जल्दी मची कि कंडक्टर अपना बैग, टिकट और पैसा बस में भूल गया। शहर में ट्रेन चली नहीं क्योंकि सारे ड्राइवर कहानियों में खोए हुए थे। अखबार भी नहीं छपे। मकान बनने बन्द हो गए।

होटल में खाना मिलना बन्द हो गया, भेलवाले ने भेलपुरी नहीं बनाई। मछुआरे मछली पकड़ने नहीं गए। कोई कुछ करना ही नहीं चाहता था, बस कहानियाँ सुनाना और सुनाना!

डाकिए चिट्ठी लेकर नहीं आए क्योंकि वे कहानियाँ सुनते रहे। चौराहे पर जहाँ चारों ओर कार-स्कूटर की भीड़ लगी हुई थी, उनके बीच में पुलिसवाला बैठा कहानियाँ सुना रहा था। घरों में टेलीविज़न चले ही नहीं। चारों तरफ बस कहानियाँ, सिर्फ कहानियाँ।

इतना बड़ा शहर। सब कुछ ठप्प। जैसे सब कुछ ठहर गया था। शहर के मेयर को चिन्ता होने लगी, अब क्या किया जाए? समुद्र के किनारे अपने घर चहलकदमी करते हुए उन्होंने अपने मंत्रियों से बात की।

कोई कुछ कर ही नहीं रहा है। शहर में सारा काम बन्द पड़ा है। मंत्रियों ने रात-रातभर जागकर योजनाएँ बनाईं, कोई फायदा नहीं। किसी ने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया।

अन्त में दीदी और मीमी को खोजकर समुद्र के किनारे मेयर के निवास पर हाज़िर होने का हुक्म मिला। मंत्रियों को बताया गया कि इन दोनों से शहर में कहानियों की बाढ़ आई है जिसमें सारा शहर गोते लगा रहा है।

ऊँचे खम्बों और ऊँची छतवाले उस विशाल कमरे में नन्हीं मीमी और भी छोटी दिख रही थी। उसने दीदी का हाथ कसकर पकड़ लिया। भारी भरकम मंत्रियों के बीच घिरी हुई दीदी भी छोटी लग रही थीं। कोई मुस्कराया तक नहीं। सभी लोग उन दोनों को भवें सिकोड़े, गुस्से भरी आँखों से देख रहे थे।

मेयर की रौबीली आवाज़ गूँजी, "कहानियों ने तो नाक में दम कर रखा है। हमारा इतना बड़ा शहर ठप्प पड़ गया है। हम करें क्या?" कमरे में सन्नाटा छा गया। खिड़की के बाहर हलकी-सी आवाज़ तैर रही थी। वहाँ मेयर का माली उनके अंगरक्षकों को कहानी सुना रहा था। छोटी लड़की ने दीदी का हाथ और कसकर पकड़ लिया। दीदी बिना घबराए मेयर के सामने आईं। उनकी आवाज़ साफ सुनाई दी, "ठीक है। एक शर्त है। आप ऐलान कर दीजिए कि इस शहर में हर सुबह और हर शाम को एक कहानी सुनाई जाएगी। इस तरह सबके पास कहानियाँ होंगी और वे अपना काम भी कर पाएँगे।"

मेयर उछले, "बहुत खूब!" मंत्री ताली बजाने लगे। भारी-भरकम, मोटे-लम्बे आदमी-औरतें सब मुस्कराने लगे। दीदी की उँगलियों पर मीमी की पकड़ ढीली पड़ गई।

सबने जैसे चैन की साँस ली हो। तब से आज तक उस शहर में हर जगह एक कहानी सुबह और दूसरी रात को सुनाई जाती है।

उसी दिन से मीमी और दीदी का वह भीड़ भरा शहर कहानियों का शहर कहलाने लगा है। चक मक

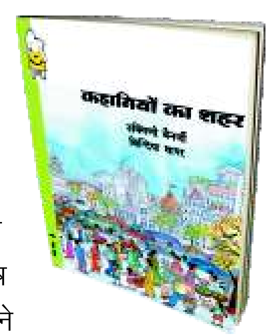

रुक्मणी बनर्जी की यह बेहद मीठी कहानी प्रथम बुक्स ने छापी है। इस किताब के चित्र देखो...इन्हें बेमिसाल चित्रकार बिन्दिया थापर ने रचा है। अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद सर्वेन्द्र विक्रम ने किया है। ...और इसे चकमक में पढ़वाने का सुझाव दिया – किताबों से और बच्चों से...हमारी समूची दुनिया से खूब प्रेम करने वाले अरविन्द गुप्ता ने। क्या तुम कभी उनकी बेवसाइट www.arvindguptatoys.com पर गए हो?

यह किताब मँगाने के लिए तुम 080 - 42052574 पर सम्पर्क कर सकते हो या prathambooks.org की मदद ले सकते हो।

धूप

उदयन वाजपेयी

मानो कोई चमकीली पीली चादर हो धरती पर हर सुबह से शाम तक बिछ जाती हुई, पेड़ों पर फैल जाती हुई, हिरनों की पीठ पर दौड़ती हुई, नदी के पानी पर बहती हुई। मानो कोई चमकीली पीली चादर हो जिसे बहुत मुश्किल से, बिलकुल धीरे-से उठा लिया जा सकता हो, उठाकर शरीर के चारों ओर लपेट लिया जा सकता हो इतनी पतली-सी चमकीली पीली चादर हो धूप। जब बारिश हो घनघोर, चहुँ ओर और जाया जा सके बादल के भी ऊपर, कैसे भी। खुद उड़कर या हवाई जहाज़ में बैठ कर। या उड़न खटोले में लेट कर। घनघोर बारिश के दिन अगर जाया जा सके बादलों के ऊपर। वहाँ, वहाँ बादलों के उस तरफ वह मिलेगी बादल पर चुपचाप फैली हुई।

मानो वहाँ लेट कर धरती पर होती घनघोर बारिश को, बारिश में पेड़ों को, हिरनों को भीगता हुआ देख रही हो। वही बेहद पतली-सी चमकीली पीली धूप। बादलों के उस तरफ लेटी हुई। धूप। हथेली से फिसल कर धरती पर गिरती हुई।

सर्दियों में गर्माहट की जगह बारीक-सी मुस्कराहट लिए झरती हुई। धूप।

एंड्रू वेथ की दुनिया

आत्रेयी डे

एंड्रू वेथ की पूरी दुनिया उनके घर और उसके आसपास सिमटी रही। खिड़की से बाहर जितना दिखता वही उनका बाहर था। पर यही छोटा-सा बाहर उनके भीतर आकर विस्तार पाता, गहरा हो जाता। शहर का शोर उनके भीतर न जा पाता। इससे उनका भीतर एकदम शान्त बना रहता। शहर से दूर उनकी खिड़की से दूर-दूर तक फैले खेत दिखते, पड़ोस की क्रिस्टीना दिखती जो चल-फिर नहीं पाती थीं। घर में उनका पालतू कुत्ता दिखता। कभी-कभार करीबी दोस्तों से बात हो जाती। और यही भीतर उनके चित्रों में रूप पा जाता।

चित्र 1 में बन्द खिड़की के पास सोता एन्ड्रू वेथ का कुत्ता है। सिर तकिए पर है। बाहर चाँदनी में नहाया भुतहा-सा सफेद घर जैसे उसकी रखवाली में खड़ा है और भीतर कुत्ता अपनी दुनिया में सुरक्षित सो रहा है। खिड़की से चाँद नहीं दिखता। उसकी चाँदनी उस सफेद घर से टकरा कुत्ते के सिरहाने आ बैठी है। इसी रोशनी की बदौलत कमरे की हर चीज़ दिख रही है। कमरे में दो खिड़कियाँ हैं एकदम पास-पास। इससे लग रहा है जैसे एक तस्वीर में दूसरी तस्वीर हो। दीवार पर चाँदनी से बने बैंगनी धब्बे और तकिए पर पसरी नीली रोशनी के सिवाए पूरा तस्वीर में स्लेटी, सफेद, भूरे और जंग के रंग ही दिख रहे हैं। हर ओर खामोशी है। ऐसी खामोशी जिसे छुआ जा सकता है। जैसे हम इस घर को सुन सकते हैं, सोते कुत्ते की साँसें भी सुनाई देती हैं।

लगभग पूरी उम्र घर में ही गुज़ार देनेवाला यह चित्रकार बाहर की आपाधापी से खींचकर हमें भीतर ले आता है। यहाँ शान्ति है, सुकून है। रंग यहाँ इतनी खामोशी से, सादगी से पसरे हैं कि आपके देखने, सोचने में दखल नहीं देते। वो सच के इतने पास हैं कि उन्हें छू लो तो वो जग जाएँगे।

चित्र 1

मैं एक ऐसे ही पल के इन्तज़ार में हूँ जो रुकेगा नहीं...

एंड्रू वेथ अमरीका में शहर से दूर रहते थे। घर के आसपास खुली जगहें थी, खेत थे। जिन्हें वो कभी खिड़की से देखते कभी उनके बीच चहलचदमी करते। यही स्मृतियाँ उनके कैनवास पर जगह पातीं। वो पेंसिल से फटाफट हज़ारों चित्र बनाते हैं। और फिर ड्राई ब्रुश तकनीक से या वॉटर कलर से उनमें रंग भरते। अकसर इसके बाद वे टेम्प्रा की मुश्किल तकनीक का इस्तेमाल करते हुए इन तस्वीरों में जान भरते जिनमें संगीत है, उनकी यादें बसी हैं। टेम्प्रा में सूखे रंग, पानी और अण्डे की ज़र्दी मिलाई जाती है। वेथ कहते हैं कि मुझे मिट्टी के अलग-अलग रंग पसन्द हैं। मुझे उन्हें हाथ में लेना अच्छा लगता है। मैं उन्हें उँगलियों में सहेजता हूँ। टेम्प्रा से मैं खुद परत-दर-परत बनता हूँ वैसे ही जैसे पृथ्वी बनती है परत-दर-परत। टेम्प्रा के साथ काम धीमे-धीमे ही किया जा सकता है।

एंड्रू बचपन में काफी कमज़ोर थे। वे काफी बीमार रहते थे। इसलिए उनकी पढ़ाई-लिखाई घर पर ही हुई। पिता जाने-माने चित्रकार थे। चित्रकला उन्होंने पिता से घर पर ही सीखी। एक रेल दुर्घटना में पिता की मौत हो जाने के बाद एंड्रू काफी उदास रहने लगे। यह उदासी उनके चित्रों में भी झलकती है। पिता के जाने के बाद उन्होंने चित्रकला की अपनी नई शैली खोजी।

चित्र 2

वेथ के पड़ोस में रहनेवाली क्रिस्टीना के शरीर के निचले भाग में लकवा हो गया था। **क्रिस्टीना की दुनिया** नाम की उनकी पेंटिंग (चित्र 2) बहुत मशहूर हुई जिसे न्यूयॉर्क के म्यूज़ियम ऑफ मॉर्डन आर्ट में देखा जा सकता है। वेथ ने क्रिस्टीना को अपने खेत की खड़ी फसल में बैठे देखा। उनकी पीठ वेथ की तरफ थी। अपनी बाईं बाँह पर टिकी असहाय और कमज़ोर क्रिस्टीना अपने दाएँ हाथ को आगे बड़ा जैसे किसी अनदेखे से सहारा माँग रही थीं।

चित्र में क्रिस्टीना की बेबसी, लाचारी महसूस की जा सकती है। उसकी निगाहें घर पर टिकी हैं। बाएँ कोने में एक अकेला खड़ा कोठार उस घर को बहुत उदास और अकेला बना रहा है। क्रिस्टीना जहाँ है वहाँ से मौसम की मार खाया उसका घर बहुत दूर लग रहा है। आसमान सपाट है। सफेद-सा और धुँधला। रोशनी आसमान के घूसर चेहरे से चारों ओर छितरा रही है। पीली-लाल-सुनहरी पकी फसल उसी चौंध में चमक रही है। पर दाईं ओर रोशनी को कोई न कोई स्रोत ज़रूर है। जिसकी रोशनी में घर, कोठार और क्रिस्टीन के बालों के सिरे चमक रहे हैं। कुछ बाल उसके जूड़े से निकल आए हैं। वहाँ कोई पेड़ नहीं हैं।

वेथ कहते थे – मैं एक ऐसे ही पल के इन्तज़ार में हूँ जो रुकेगा नहीं। ठहर चुके पल का मुझे इन्तज़ार नहीं।

रात

रुस्तम सिंह

रात सदा अँधेरी और काली नहीं होती। न यह ही सही है कि लोग केवल रात को ही सोते हैं। बिजली रात को भी कड़कती है; चाँद रात को भी उगता है – उसकी रोशनी में हर शय नहाई हुई लगती है।

कितनी अलग होती हैं, एक-दूसरे से, शहरों और गाँवों की रातें! झोंपड़ियों और इमारतों की रातें भी, आपस में, बहुत कम ही मेल खाती हैं।

एक ही रात में कोई सारी रात जागता है, कोई घोड़े बेचकर सोता है। कुत्ते गलियों में आवारा भौंकते हैं; उल्लू शिकार पर जाते हैं। तिलचट्टे रात-रात भर भोजन भाँजते हैं; चूहे उसे तलाशते हैं – आप चाहें तो रसोई में उनकी खटर-पटर सुन पाते हैं।

कुछ लोग देर रात गए दफतरों से निकलते हैं। कुछ अन्य लोग रात खत्म होते ही फैक्टरियों में घुसते हैं – निश्चित ही ये बाद वाले लोग झोपड़-पट्टियों से आते हैं। रईसों के लड़के-लड़कियाँ देर रात तक पबों में नाचते हैं – उनकी रात को रात कहना ठीक नहीं होगा। किसान रात भर खेत को पानी देता है – रात बहुत कम ही उसके अपने हाथ में होती है।

मैं रात को अक्सर दो या तीन बजे तक जागता हूँ। यही वह समय है जब मैं इस जैसे आलेख लिखता हूँ।

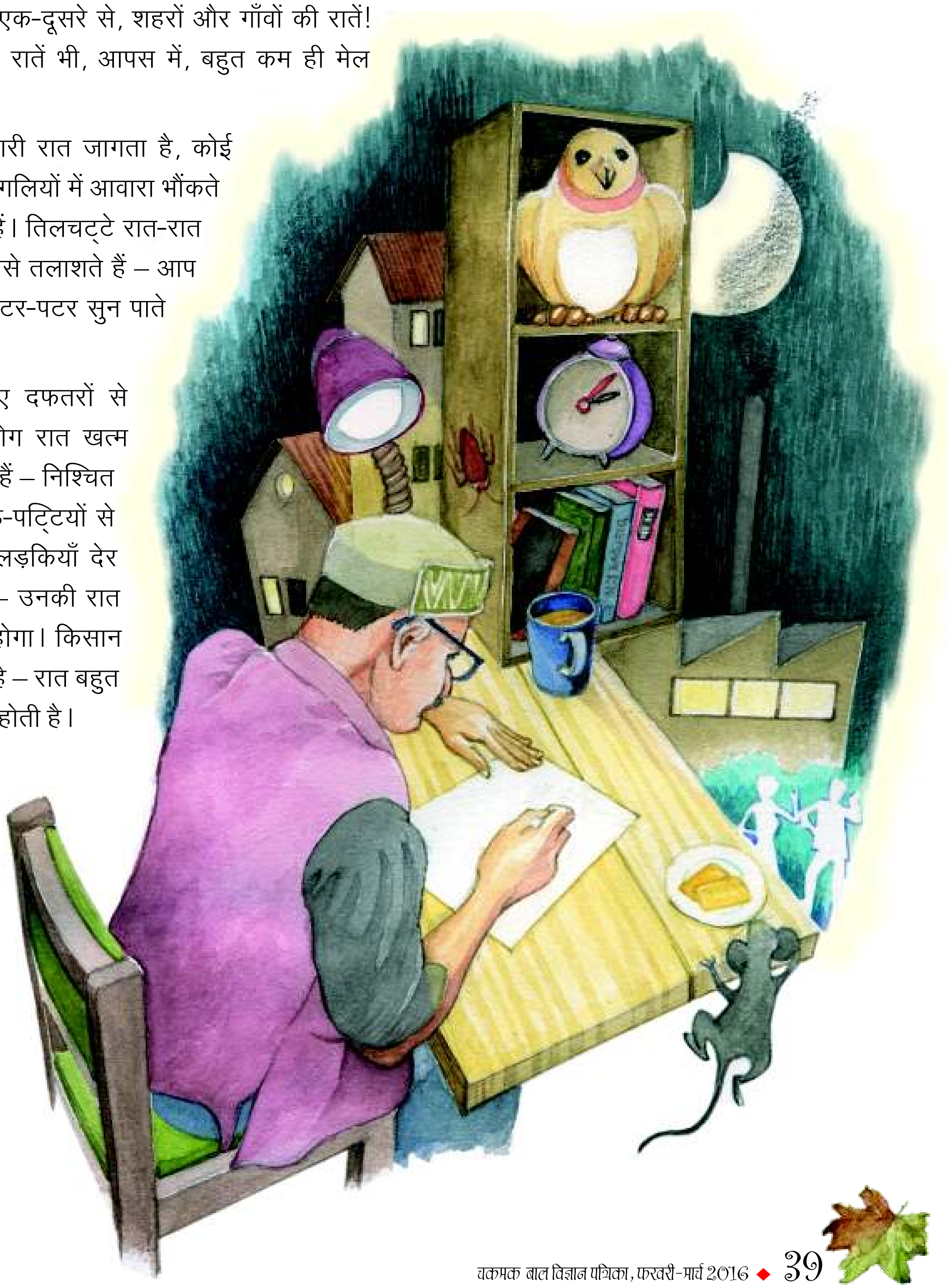

चित्रः दिलीप चिंचालकर

एक गतिविधि
निम्बू या सिरके से टॉयलेट -क्लीनर बनाना

चकमक के जनवरी के अंक में हमने सफाई की बात की थी। शौचालयों के लगातार इस्तेमाल से उस पर एक पीली-सी परत जमने लगती है जो पानी डालने पर भी नहीं छूटती है। तुम्हें पता लगाना था कि इसे साफ करने के लिए क्या कुछ कम हानिकारक पदार्थों से टॉयलेट-क्लीनर बनाया जा सकता है। पेश हैं तुम्हारे कुछ सुझाव और अंकुश गुप्ता का जवाब...

- काव्या बासन, तीसरी

1. मैंने एक प्लास्टिक की बोतल ली। फिर उसमें कोक, खराब सेब का रस, खराब आम का रस डाला। फिर उसे दो दिन तक ऐसे ही रखा। उसके बाद नमक और निम्बू डाला और फिर उसे आज़माया तो पूरा बाथरूम एकदम साफ हो गया।

- अध्ययन, तीसरी

2. सिरके में ट्री टी तेल मिलाकर टॉयलेट पर कुछ समय के लिए रहने दिया। फिर उस पर बेकिंग पाउडर बिखेर दिया। फिर सूखे-साफ कपड़े से टॉयलेट सीट को पोंछ दिया।

- अभिरथ, तीसरी

3. राख, सिरका व निम्बू का रस मिलाकर टॉयलेट साफ किया जा सकता है।

- मन्नत अरोड़ा, चौथी

4. हमने कुछ सड़े फलों को सुखाकर उसमें पानी मिलाया। फिर उस पानी से टॉयलेट साफ किया।

- नमन, तीसरी

5. हार्ड वॉटर के दाग-धब्बों को साफ करने के लिए गीले प्यूमिक स्टोन को रगड़ें। यह पानी के दाग और जमे हुए नमक को साफ कर सकता है।

साथ ही मैंने निम्बू और बोरेक्स को मिलाकर पेस्ट बनाया। इसे टॉयलेट में फैलाया फिर 4-5 घण्टे बाद धो लिया।

-जसकरन सिंह, चौथी

6. निम्बू के छिलकों को सुखाकर-पीसकर पानी में घोल लें। इससे टॉयलेट साफ किया जा सकता है।

- रुहान बब्बर, तीसरी

7. एक प्लास्टिक के बर्तन में 350 ग्राम पानी में 100 ग्राम क्लासिको ए.टी. ऐक्स डालकर मिश्रण बनाया। अन्त में डाइड्रोक्लोरिक एसिड मिलाकर टॉयलेट साफ किया।

- ज़ाइशा अरोड़ा, तीसरी

8. सड़े-गले सन्तरे, निम्बू, गलगल को मिलाकर घोल बनाया उससे टॉयलेट साफ किया।

- सिया राना, तीसरी

9. मीठा सोडा और सिरका मिलाकर टॉयलेट साफ किया।

- अल्वीन, तीसरी

(इनके अलावा आरव गाबा, मनसीरत कौर धवन, शौर्य सभरवाल, निशका जैन, वेदांश, रिया सिंगला - तीसरी; अमीशी मल्होत्रा; कनिश जिन्दल, नवरूप कौर गुमान, अरशिया गोयल, जसवीर सिंह - चौथी; तनीषा दुआ, बवलीन कौर, तनव मेहरा, नील प्रभाकर, साइना जैन, नेहमत ग्रेवाल - पाँचवीं; अशप्रीत सिंह - छठी ने भी बढ़-चढ़कर इस गतिविधि में हिस्सेदारी निभाई।)

प्रिय दोस्तो,

पिछले अंक में हमने एक गतिविधि पर बात की थी जिसमें तुम्हें टॉयलेट साफ करने के कुछ विकल्प सुझाने थे। डीपीएस लुधियाना के कई बच्चों ने कई चीज़ें आज़माईं और अपने अनुभव हमें लिखे भी। कुछ बच्चों ने कोक, पेप्सी जैसे कार्बोनेटिड ड्रिंक से टॉयलेट साफ किया, कुछ ने ट्री टी ऑयल, बोरेक्स जैसे नुस्खे भी आज़माए। इन्हें बाज़ार से ही खरीदा जा सकता है। जबकि हमने अपनी गतिविधि में उन चीज़ों को ढूँढने को कहा था जिन्हें आमतौर पर हम फेंक देते हैं। ऐसे चीज़ों का भी कुछ बच्चों ने ज़िक्र किया है। जैसे राख, सड़े-गले निम्बू, सन्तरे, गलगल आदि। वैसे मैं सोच रहा था कि राख तो क्षारीए होती है और निम्बू और सिरका अम्लीय। इसलिए राख उनके प्रभाव को कम करती होगी। लेकिन राख से एक फायदा होता है कि उसमें कुछ ठोस कण होते हैं जो चिपकी हुई गन्दगी घिसकर छुड़ाने में मदद करते हैं।

शुक्रिया दोस्तो। अपने सुझावों के लिए। अब शायद बाज़ार में मिलनेवाले क्लीनर पर हमारी निर्भरता कम होगी।

हाँ, एक बात और। कुछ साल पहले कोक के अम्लीय होने के कारण अच्छा टॉयलेट क्लीनर बनने पर टीवी आदि में काफी चर्चा हुई थी। लेकिन मैं इन्हें टॉयलेट क्लीनर के रूप में इस्तेमाल कभी नहीं करना चाहूँगा। क्योंकि मुझे लगता है कि इससे पैसे की बरबादी ही होगी जबकि मैं अपने घर के कचरे से एक अच्छा टॉयलेट क्लीनर बना सकता हूँ। और कोक को इस्तेमाल करने से उसकी बोतल का कचरा बढ़ता है सो अलग...

- अंकुश गुप्ता

एक था हाजी एक था नाजी

स्वयं प्रकाश

पनवाड़ी नाजीलाल बहुत दिनों से अपने बचपन के दोस्त हाजी से कह रहे थे कि यार! हम कभी हवाईजहाज़ में नहीं बैठे। अब तुम पायलट बन गए हो तो एक बार हमें भी आसमान की सैर तो करा दो!

आखिर एक दिन नाजी ने कहा, "अच्छा चलो, हमारी अम्मी भी बहुत दिनों से कह रही हैं कि हवाईजहाज़ की सैर करा दो, तो तुम भी चले चलना, आज हम तुमको भी आसमान की सैर करा देते हैं।"

नाजीलाल खुश-खुश हवाईजहाज़ में चढ़े, लेकिन चढ़ते ही उन्होंने नाजी से तरह-तरह के सवाल पूछने शुरू कर दिए। "ये बटन काहे के लिए हैं? वो लाइट कहाँ से जलती है? हमें घण्टी बजाना हो तो कौन-सा बटन दबाएँ?" वगैरह।

हाजी ने डपटकर कहा, "कितने सवाल पूछते हो यार! हमारा ध्यान बँट जाता है। हम जहाज़ चलाएँगे या तुम्हारे सवालों का जवाब देंगे? खबरदार जो अब तुम एक शब्द भी बोले। तुम्हारे मुँह से एक शब्द भी निकला तो तुम्हारी कसम, हम हवाईजहाज़ को किसी पहाड़ से टकरा देंगे!"

नाजी चुप हो गए और सारी उड़ान के दौरान एकदम चुप ही रहे।

जब हवाईजहाज़ उतर गया तो हाजी ने मुस्कराकर पीछे देखा और नाजी से पूछा, "कहो दोस्त, मज़ा आया?"

नाजी भरे बैठे थे। बोले, "जब हवाईजहाज़ ऊपर उठने के लिए एकदम टेढ़ा हो गया और डर के मारे हमारा बुरा हाल हो गया, हम कुछ बोले? जब अचानक बाएँ बाजू का दरवाज़ा खुल गया और खूब झपाटे से ठण्डी हवा अन्दर आने लगी, हम कुछ बोले? जब तुम्हारी अम्मी उड़ते जहाज़ के दरवाज़े से बाहर फिका गईं, हम कुछ बोले? अब पूछते हैं मज़ा आया!"

चित्रः अतनु राय

हाजी नया गाँव में पहली बार आए थे। उन्हें पंचायत सिंह पटवारी के घर जाना था। उनके पास पता था–

पंचायत सिंह पटवारी
जूना खेड़ा, घासीराम चौक
नया गाँव

बस से उतरते ही उन्होंने एक आदमी से पूछा, "भाईसाहब! जूना खेड़ा का रास्ता ये ही है?"

आदमी जल्दी में था। बोला, "आहो!" और चला गया।

थोड़ा आगे चलकर हाजी ने फिर एक आदमी से पूछा, "भैया! जूना खेड़ा का रास्ता यही है?"

आदमी साइकिल पलटाते हुए बोला, "आहो!" और चला गया।

हाजी कुछ दूर इसी रास्ते पर चलते रहे। फिर उन्हें नाजी मिले। निकर-कमीज़, सिर पर टोपी। नाजी को रोककर हाजी ने पूछा, "सुनिए साहब! जूना खेड़ा का रास्ता यही है?"

नाजी बोले, "जी हाँ।"

हाजी को थोड़ा अचरज हुआ। उन्होंने कहा, "भाईसाहब, आप बुरा मत मानना। अभी तक जितने लोग मुझे मिले सबने मेरे सवाल के जवाब में 'आहो' कहा। लेकिन आपने 'जी हाँ' कहा। क्या 'आहो' और 'जी हाँ' में कोई फर्क है?"

"फर्क तो कुछ नहीं है, बस ये है कि पढ़े-लिखे लोग 'हाँ जी' या 'जी हाँ' बोलते हैं और अनपढ़ गँवार लोग 'आहो' बोलते हैं।"

"अच्छा! तो आप पढ़े-लिखे हैं?" हाजी ने पूछा।

नाजी ने जवाब दिया, "आहो!"

नाजी सिंह की एक आँख पत्थर की थी। एक दिन वे दोस्तों के साथ खाना खाने बैठे। ध्यान बातों पर ज़्यादा था खाने पर कम। पता नहीं कब खाने के दौरान उनकी पत्थर की आँख अण्डा करी की प्लेट में जा गिरी और उसे भी वह अण्डा समझकर निगल गए।

अब शुरू हुई तकलीफ। आँख जाकर आँतों में फँस गई और उसने सारा रास्ता जाम कर दिया। ऊपर का ऊपर और नीचे का नीचे। पहले तो बदहज़मी समझकर देसी इलाज करते रहे, लेकिन चार दिन में तो हालत और खराब हो गई। डॉक्टर ने जुलाब दिया, लेकिन कोई असर नहीं। अस्पताल में भर्ती करना पड़ा। डॉक्टरों ने अच्छी तरह मुआयना किया और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि ऑपरेशन करना पड़ेगा।

संयोग से अगले ही दिन मुम्बई के मशहूर सर्जन डॉक्टर हाजी दस्तूर शहर में एक संस्था में भाषण देने आनेवाले थे। स्थानीय डॉक्टरों ने निश्चय किया कि यह ऑपरेशन डॉक्टर दस्तूर से ही करवाया जाए।

डॉक्टरों की स्थानीय संस्था ने अनुरोध किया तो डॉक्टर हाजी दस्तूर ऑपरेशन करने के लिए राज़ी भी हो गए।

ऑपरेशन से पहले डॉक्टर दस्तूर को सिर्फ यह बताया गया था कि मरीज़ की आँतों में रुकावट आ गई है, क्या फँसा है, यह नहीं बताया गया था। क्योंकि डॉक्टर खुद भी इस बारे में पूरी तरह निश्चित नहीं थे।

ऑपरेशन की सारी व्यवस्था कर ली गई।

ऑपरेशन शुरू हुआ।

अचानक ऑपरेशन के बीच में डॉक्टर हाजी दस्तूर चीख पड़े, "ओ माई गॉड!"

सारे लोग डर गए। क्या बात हो गई?

डॉक्टर दस्तूर फिर बोले, "ओ माई फादर इन हेवन! ओ होली मदर! ये क्या है?"

एक सहायक ने हिम्मत कर के पूछा, "क्या हुआ डॉक्टर दस्तूर?"

डॉक्टर हाजी दस्तूर बोले, "मैं बहुत सीनियर डॉक्टर हूँ। चालीस साल से प्रैक्टिस कर रहा हूँ। मैंने बहुत से ऑपरेशन किए हैं। बहुत सारी आँतें देखी हैं... लेकिन ये पहली आँत है... जो मुझे देख रही है।"

परीक्षा न हो,
तो क्या तुम सीखोगे-पढ़ोगे नहीं?

सुशील जोशी

परीक्षा का मौसम तो आजकल पूरे साल रहता है। मैं जब स्कूल में पढ़ता था तो ऐसा नहीं था। साल में दो बार परीक्षा होती थी। इसके कारण बहुत टेंशन हो जाता था। रात को नींद नहीं आती थी, दिन में किसी चीज़ में मन नहीं लगता था। भूख भी नहीं लगती थी। रात को नींद आ जाए, तो बुरे-बुरे सपने आते थे। एक सपना बार-बार आता था – हर बार एकदम एक जैसा नहीं होता था पर बात एक ही रहती थी। मैंने रात को खूब पढ़ाई की है (पढ़ाई की है का मतलब किताब को ज़ोर-ज़ोर से बोलकर रट लिया है)। सुबह परीक्षा है मगर मेरी नींद ही नहीं खुलती है, मैं सोचता ही रहता हूँ कि कौन-सा सवाल आने पर क्या जवाब लिखना है मगर परीक्षा के कमरे तक पहुँच ही नहीं पाता। सपना देखते-देखते खूब टेंशन हो जाता और नींद खुल जाती। देखता तो रात के 2 बजे हैं। कभी-कभी यही सपना इस तरह आता था कि मैं परीक्षा देने पहुँचा मगर मैंने जिस विषय की तैयारी की थी परीक्षा उस विषय की नहीं थी। या ऐसा भी सपना आता था कि सब याद है मगर पेन में स्याही खत्म हो गई है (स्याहीवाले पेन तो तुमने देखे नहीं होंगे!)। कहने का मतलब है कि परीक्षा का भूत सिर पर सवार हो जाता था।

तब भी लगता था और आज भी सोचता हूँ कि परीक्षा होती ही क्यों है! तब समझ में आता था कि परीक्षा यह फैसला करने के लिए होती है कि कौन-से बच्चे अगली कक्षा में जाएँगे और कौन-से एक साल और उसी कक्षा में रुकेंगे। बीच में एक सप्लीमेंटरी परीक्षा होती थी। यदि कोई बच्चा सारे विषयों में पास हो गया हो मगर एक-दो विषयों में फेल हो गया हो तो वह इस सप्लीमेंटरी परीक्षा में बैठ जाता। यदि इसमें पास हो गया तो उसे अगली कक्षा में बैठने देते थे। मुझे यह भी समझ

दिव्यांशी, पाँचवीं, डीपीएस, लुधियाना

में नहीं आता था कि सप्लीमेंटरी परीक्षा में कोई पास कैसे हो जाता था। उसने जो पढ़ाई की थी वह तो परीक्षा में उसके काम आई नहीं थी (काम आती तो वह पहली ही परीक्षा में पास न हो जाता?) अब एक-डेढ़ महीने में घर पर बैठकर वह ऐसी क्या करामात करता था कि उसी विषय में पास हो जाता था। कॉलेज में तो सारे विषयों की परीक्षा दोबारा दे सकते थे। यदि पास हो गए तो अगली कक्षा में (बस अंक सूची पर लिख देते थे कि वह छात्र दोबारा परीक्षा देकर पास हुआ है)। यह भी समझ से परे है – पास हुआ मतलब उसे वह सब आता है जो उस कक्षा के लिए तय है। तो इस बात से क्या फर्क पड़ता है कि उसने वह सब कितने दिन में सीखा!

एक और बात मज़ेदार थी – किसी विषय में 33 प्रतिशत अंक मिल जाएँ तो पास हो जाते थे। यानी कुल जितना सीखना है उसमें से 67 प्रतिशत न आता हो तो भी बात बन जाती थी। ज़रा सोचो सायकिल चलाना 33 प्रतिशत आ जाए, तो क्या तुम सायकिल चला सकोगे? और अंक सूची से यह भी पता नहीं चलता था कि किसी बच्चे को कौन-सा 33 प्रतिशत आता है और कौन-सा 67 प्रतिशत नहीं आता।

खैर आजकल परीक्षाएँ साल भर होती रहती हैं। कहते हैं कि साल में एक बार परीक्षा करने से टेंशन होता था। दूसरा यह भी कहते हैं कि समय-समय पर परीक्षा करने से पता चलता रहता है कि बच्चों को कितना समझ में आ रहा है। यह समझ में आ जाए, तो कोशिश कर सकते हैं कि जो बात समझ में नहीं आई है, वह फिर से समझा दी जाए। मतलब आजकल की परीक्षा सिर्फ पास-फेल करने के लिए नहीं होती। यह बच्चों की मदद करने के लिए होती है। परीक्षा से पता चलता है कि बच्चों को कहाँ परेशानी हो रही है, कौन-सी बातें सीखने में मुश्किल आ रही है। जब यह पता चल जाता है तो बच्चों को मदद कर सकते हैं। यानी यह परीक्षा नहीं है, यह तो बच्चों की दिक्कतों को समझने का तरीका है।

मगर ऐसा होता नहीं है। मैं जितने बच्चों और उनके माता-पिताओं को जानता हूँ, वे सब अब साल भर उस तरह के टेंशन में रहते हैं, जैसा मुझे साल में एक बार होता था। बच्चे वही रट्टा मारते नज़र आते हैं। बल्कि अब तो ज़्यादा ही हो गया है। हम लोग ट्यूशन वगैरह पर नहीं जाते थे। होमवर्क भी बहुत ज़्यादा नहीं होता था। आजकल तो होमवर्क में माता-पिता की परेड होती है या फिर होमवर्क करने के लिए बच्चे को ट्यूशन जाना पड़ता है। यानी यह वही परीक्षा है जो मुझे साल में एक बार देना पड़ती थी और तुम्हें साल भर देना पड़ती है। वैसे तो देश में एक नया कानून बना है जिसमें कहते हैं कि आठवीं कक्षा तक किसी बच्चे को फेल नहीं कर सकते। मगर अब कई शिक्षक, माता-पिता, शिक्षा के अफसर और मंत्री वगैरह चाह रहे हैं कि पास-फेल तो करना ही पड़ेगा। वे ऐसा क्यों कह रहे हैं?

यह देखते हैं कि हमने और तुमने ऐसी कितनी चीज़ें सीखी हैं जिनके लिए कोई परीक्षा नहीं होनेवाली थी। और क्या-क्या सीखा है जिसमें पास-फेल का कोई सवाल नहीं था!

इन लोगों का कहना है कि पास-फेलवाली परीक्षा बन्द हो जाने से शिक्षा की हालत खराब हो गई है। फेल होने का डर नहीं है, तो बच्चों ने सीखना-पढ़ना बन्द कर दिया है। यह भी कह रहे हैं कि जब पास-फेल करना नहीं है तो शिक्षकों ने पढ़ाना भी बन्द कर दिया है। बच्चों ने शिक्षकों का सम्मान करना बन्द कर दिया है। क्या यह सच है?

यही बात मैं तुमसे करना चाहता हूँ। कई लोग मानते हैं कि परीक्षा (पास-फेलवाली) नहीं होगी तो बच्चे कुछ नहीं सीखेंगे। क्या तुम भी ऐसा मानते हो कि परीक्षा न हो तो तुम सीखना बन्द कर दोगे? क्या हम जो कुछ सीखते हैं वह सिर्फ इस डर से सीखते हैं कि न सीखा तो फेल घोषित कर दिए जाएँगे?

मैं तो ऐसा बिलकुल भी नहीं मानता। मैं देखता हूँ कि मैंने कई सारी चीज़ें सीखी हैं जिनमें परीक्षा नहीं होनेवाली थी। अलग-अलग चीज़ें सीखने के कारण भी अलग-अलग थे। दूसरी ओर, मैं यह भी देखता हूँ कि परीक्षा के लिए सीखी गई कई चीज़ें मैं जल्दी ही भूल भी गया।

(शेष भाग पेज 85 पर)

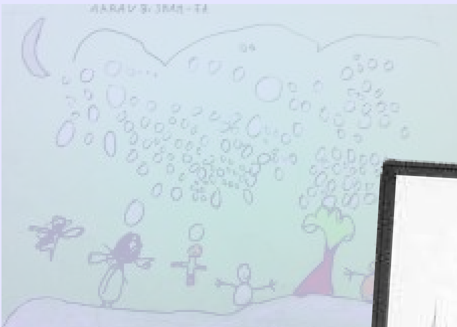

अगले महीने से हमने बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता है जो मौसम हमने छोड़ा था

कवि गुलज़ार की इस पंक्ति पर तुम्हारे आठ सौ चित्र मिले। गुलज़ार साब के पसन्दीदा सात चित्र तथा कुछ अन्य उम्दा बने चित्रों का लुत्फ उठाओ। इन्हें भेजनेवाले चित्रकारों को उपहार में चकमक डायरी अथवा किताबें भेजी जा रही हैं।

नितीश, नौवीं, बाल भवन भागलपुर, बिहार

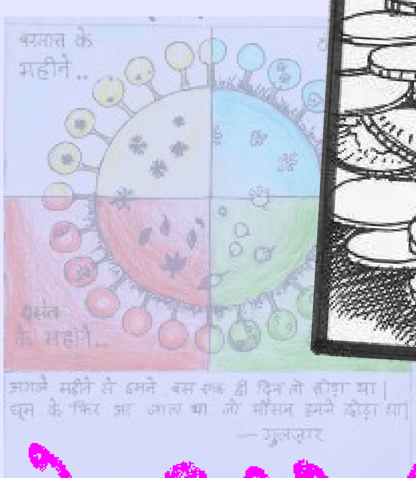

बोलीरंगोली

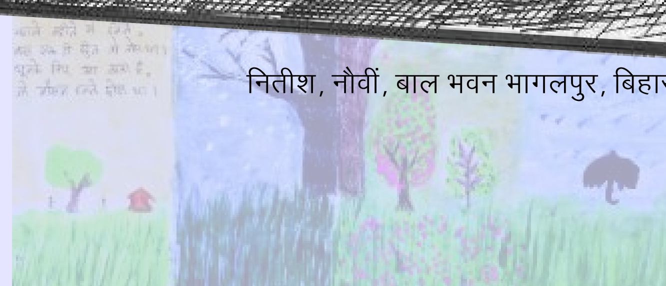

बोलीरंगोली

अगले महीने से हमने बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता है जो मौसम हमने छोड़ा था

सन्नी, दीपालय, सातवीं, नई दिल्ली

प्रतीक झा, आठवीं, डीपीएस पटना

पता है -
चकमक, एकलव्य,
ई-10, शंकर नगर, शिवाजी नगर,
भोपाल -16 (फोन - 09425010115)
चाहो तो ईमेल कर दो chakmak@eklavya.in

वी. पूर्णिमा, सातवीं, डीपीएस, कोयम्बटूर

रिया, सातवीं, डीपीएस कोयम्बटूर

बोलीरंगोली

अगले महीने से हमने बस एक ही दिन तो तोड़ा था
घूम के फिर आ जाता है जो मौसम हमने छोड़ा था

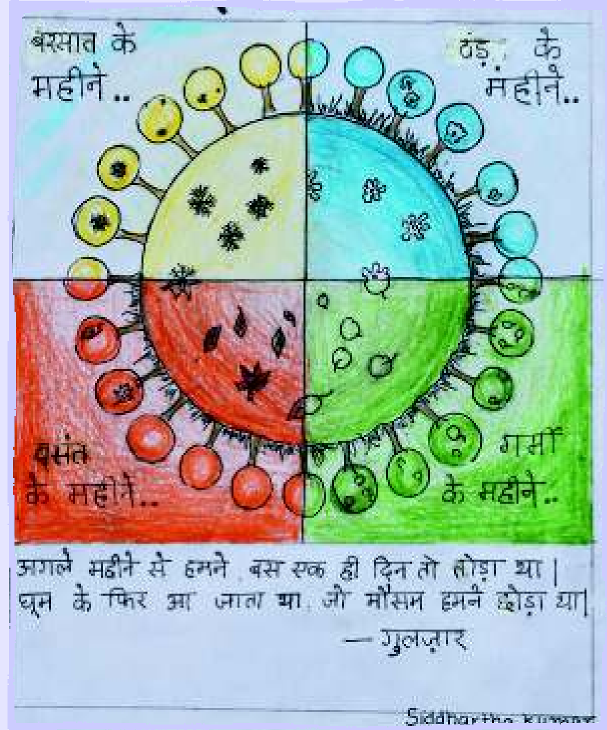

सिद्धार्थ कुमार, सातवीं, डीपीएस पटना

अरनव सिन्हा, सातवीं, डीपीएस पटना

वामिनी मिश्रा, आठवीं, डीपीएस वाराणसी

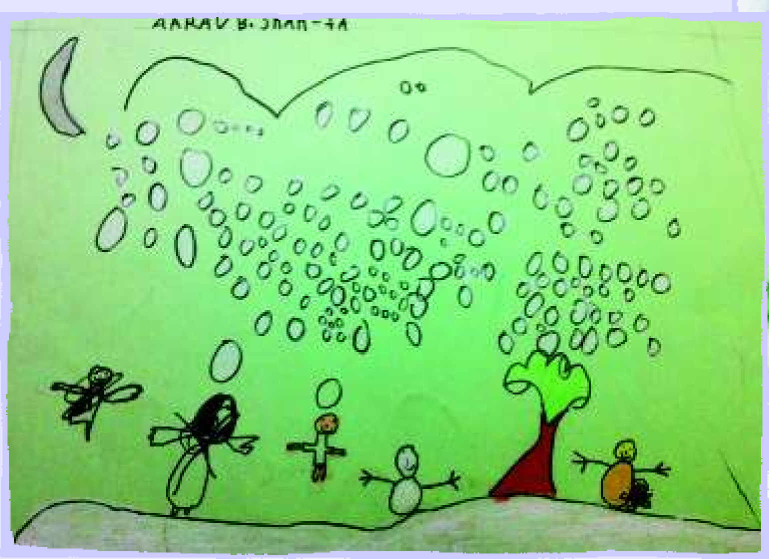

आरव बी शाह, पहली, डीपीएस तापी

विदूषी शेखर, दसवीं, डीपीएस पटना

वेदांश अग्रवाल, तीसरी, आनन्द विहार स्कूल. भोपाल

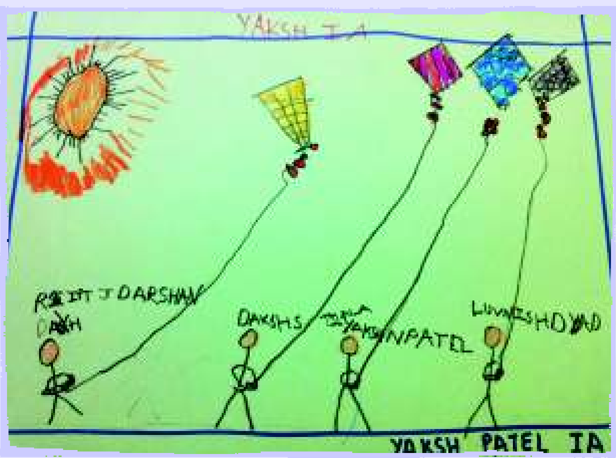

यक्ष पटेल, पहली, डीपीएस तापी

अप्रैल की कविता सुनो –

रख ढेले पर ढेला और हिसाब लगा
खोल नया खाता और नई किताब लगा

हो सकता है बड़े तुम्हें इसके अर्थ बताएँ। उनके अर्थ सुनो-समझो पर चित्र अपने मन का ही बनाओ...। कोशिश करना कि तुम्हारा चित्र हमें 14 मार्च तक मिल जाएँ। चित्र के साथ अपना पता, कक्षा, फोन नम्बर ज़रूर लिखना।

खुशी, दीपक समूह, दिगन्तर, जयपुर

नेहा कुमारी, पाँचवीं, बालभवन किलकारी, पटना

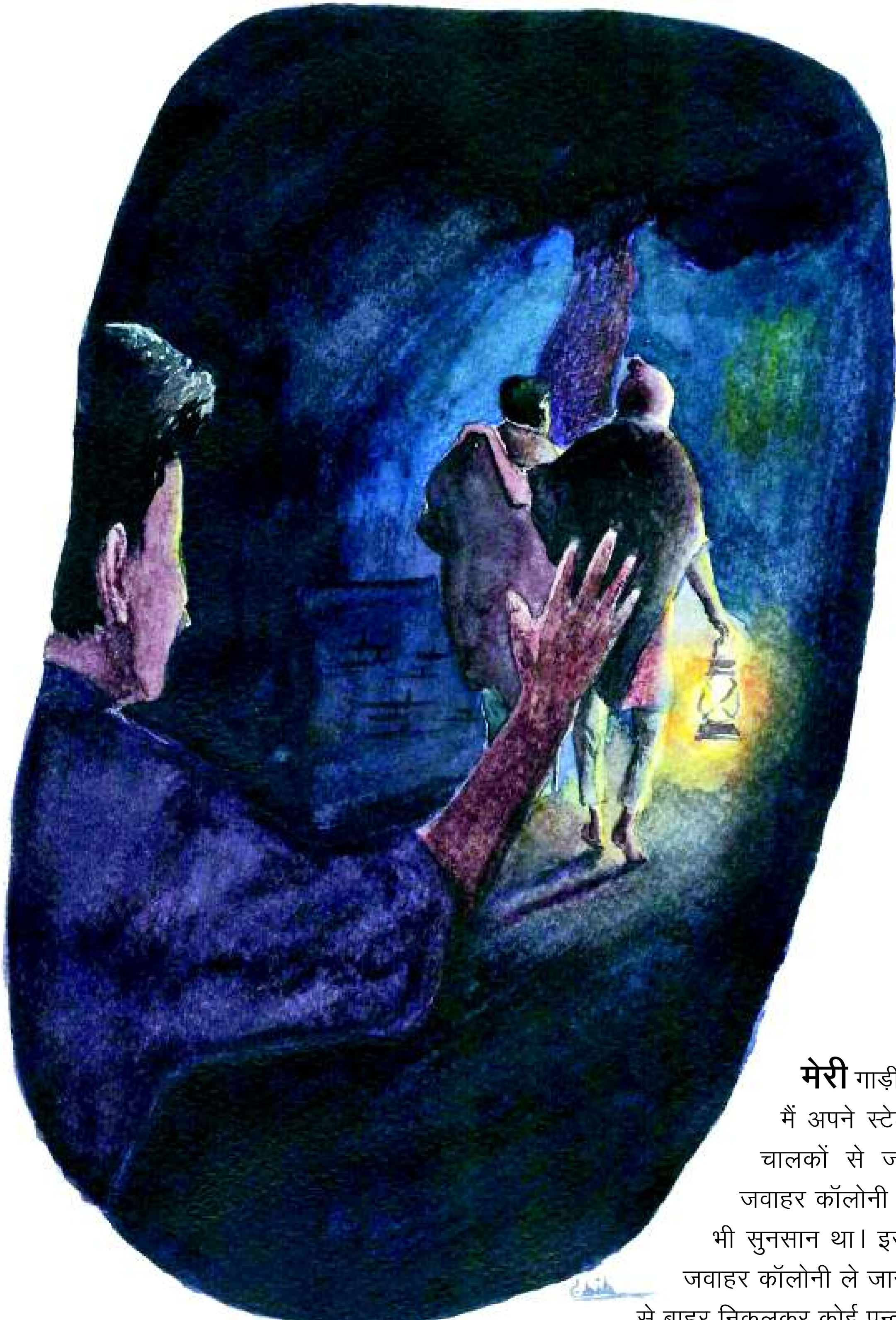

उजाला

सेवकराम यात्री

मेरी गाड़ी कई घण्टे देरी से चल रही थी। जब मैं अपने स्टेशन पर पहुँचा तो मैंने कई रिक्शा चालकों से जवाहर कॉलोनी चलने को कहा। जवाहर कॉलोनी स्टेशन से दूर पड़ती थी और रास्ता भी सुनसान था। इसलिए कोई भी रिक्शा चालक मुझे जवाहर कॉलोनी ले जाने को तैयार नहीं हुआ। मैं प्लेटफॉर्म से बाहर निकलकर कोई पन्द्रह मिनट तक इस इन्तज़ार में खड़ा रहा कि कोई रिक्शा चालक न सही शायद ट्रेन से उतरी उधर जानेवाली कोई सवारी ही दिख जाए। रात गहराने लगी तो सुनसान रास्ते पर जाते हुए मन पक्का नहीं हो पाता। मगर हाँ, संग-साथ के लिए कोई मिल जाए तो कोई निडर होकर जा सकता है।

चित्रः हबीब अली

काफी देर तक जब कोई पहचानवाला नहीं दिखा तो मैंने सोचा अकेले जाने की बजाय स्टेशन के प्रतीक्षालय में रुककर ही कुछ घण्टे बिता लिए जाएँ। मगर मेरा यह सोचा हुआ भी सम्भव नहीं हुआ। क्योंकि प्रतीक्षालय में भीड़-भाड़ इतनी ज़्यादा थी कि मुझे वहाँ अपने ठहर सकने की कोई गुँजाइश नज़र नहीं आई। इसके अलावा थोड़ी-थोड़ी सर्दी भी शुरू हो चुकी थी। जो रात के गहराते ही और बढ़ जानी थी। मेरे पास ओढ़ने-बिछाने को कुछ नहीं था। अन्त में मैंने तय किया कि हिम्मत से काम लिया जाए और जवाहर कॉलोनी की ओर चल दिया जाए।

मैं रास्ते से बखूबी परिचित था। आखिरकार मन पुख्ता करके मैं चल ही पड़ा। चलते-चलते जैसे ही मैं स्टेशन से बाहर निकला तो यह देखकर दंग रह गया कि सड़क की दोनों तरफ खड़े बिजली के खम्भों पर एक भी बल्ब या रॉड नहीं जल रही है। अँधेरी रात थी और मेरे साथ चलनेवाला कोई नहीं था। ऐसी विकट परिस्थिति में निश्चिन्त होकर चलते जाना आसान नहीं था।

एक-दो गाड़ियाँ इधर-उधर आईं भी लेकिन उनकी धीमी रोशनी में तो रास्ता दूर तक नहीं देखा जा सकता था। फिर सड़क भी ठीक नहीं थी। उसमें जगह-जगह गड्ढे थे। खैर! किसी तरह सावधानी से धीमे-धीमे चलते हुए मैं एक मोड़ तक पहुँच ही गया।

वहाँ से मेरा रास्ता दूसरी ओर मुड़ता था। तभी मैंने देखा कि थोड़ा-सा आगे दो व्यक्ति धीमी गति से एक लालटेन हाथ में लिए आगे बढ़ रहे थे।

मुझे उस लालटेन के उजाले में रास्ता दिख सकने की सम्भावना दिखाई पड़ी। मैं लपककर उन दोनों के नज़दीक पहुँच गया। उनके एकदम पास जाकर मैंने पाया कि वे दोनों राहगीर तो निपट अँधे थे। उनके हाथ में जलती लालटेन देखकर मुझे घोर आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा, "भाई, आप जो यह जलती लालटेन लेकर रास्ते पर चल रहे हैं – भला इससे आपको क्या लाभ मिल रहा है?"

यह सुनकर वे दोनों चलते-चलते रुक गए और उनमें जो उम्र में बड़ा था बोला, "बाबूजी, लालटेन हम अपने वास्ते लेकर नहीं चल रहे हैं, बल्कि आप जैसे आँखवालों के लिए लेकर चल रहे हैं।"

मैंने कहा, "मेरे लिए क्यों? मेरी आपको क्या चिन्ता? जिसे ज़रूरत होगी वह खुद अपनी रोशनी का प्रबन्ध करेगा।"

उनमें से एक बोला, "नहीं बाबूजी! यह बात नहीं है। जो रात के अँधेरे में आते-जाते हैं – उन सबके पास उजाले का इन्तज़ाम नहीं होता।" फिर उसने अपनी बात बीच में रोककर पूछा, "क्या आपके पास रोशनी का प्रबन्ध है?"

उसका सवाल सुनकर मैं सकपका गया और झेंपते हुए बोला, "नहीं। मेरे पास रोशनी की कोई व्यवस्था नहीं है। मैं तो टॉर्च लेकर भी नहीं चला।"

वह बोला, "बस तो फिर आप ही समझ लो। जब ऐसी सुनसान सड़क पर आपके पास उजाले के लिए कुछ नहीं है तो औरों के पास क्या प्रबन्ध होगा? इसलिए तो हम रात के समय यह जलती लालटेन लेकर चलते हैं। हम तो ठहरे निपट अँधे और हमारे लिए अँधेरे-उजाले में कोई फर्क ही नहीं है। यह लालटेन तो उन सबके लिए हैं जो अँधेरे में चलते हुए हमारे जैसे ही अँधे हो जाते हैं और हमें टक्कर मारकर चले जाते हैं। सच्ची बात तो यह है कि उनकी टक्करों से निजात पाने के लिए ही हम रात को जलती लालटेन लेकर चलते हैं। आप जैसे किसी दयालु से ही हम यह लालटेन जलवाते भी हैं।"

मैंने उन दोनों को गहरी कृतज्ञता अनुभव करते हुए धन्यवाद दिया और उनकी लालटेन की रोशनी में लम्बा बीहड़ रास्ता पार कर गया।

जनवरी की चित्र पहेली हल

पौ	धा		टा	पू		ली	ट	र
	र	ह	ट		मो	ची		
द			प	तं	ग		ब	क्सा
वा		गि	ट्टी		रा	के	ट	
त	ब	ला		तू		क	न	क
	र	स		फा	व	ड़ा		प
	ग		पा	न			कू	ड़ा
गो	द	ना			साँ	क	ल	
ली		ली	प	ना		प	र	दा

दो लघु कथाएँ

“अच्छा हुआ जो हम एक खच्चर को अपने साथ पिकनिक पर ले आए। जब एक लड़का घायल हुआ तो इसी खच्चर पर तो हम उसे वापस ला पाए थे।”

“पर वो लड़का घायल हुआ कैसे?”

“खच्चर ने लात मार दी थी।”

चार भिक्षुओं ने तय किया कि वे दो हफ्ते बिना बोले ध्यान लगाए रहेंगे।

पहली ही रात जब वे बैठे तो मोमबत्ती की लौ कुछ देर काँपी और बुझ गई।

“ओह नहीं। मोमबत्ती तो बुझ गई।” पहला भिक्षु बोला।

“हमें तो बात नहीं करनी थी ना!” दूसरा बोला।

“तुम दोनों को इस तरह एकान्त तोड़ने की ज़रूरत क्या पड़ी थी?” तीसरा बोला।

“वाह, देखा एक मैं ही था जो बोला नहीं।” चौथा बोला।

बातूनी *(पेज 23 का शेष भाग)*

वे हमारे चाचा के बड़े अच्छे दोस्त थे। नागपुर में पास-पास घर थे हमारे। बचपन में मुझे गोद में लेकर खिलाते थे। अब जब मिलते हैं कहते हैं, ‘क्यों बेटा भूल गए? घर नहीं आते हो।’”

वे दस-पन्द्रह मिनट तक डॉ. गुप्ता से अपने पारिवारिक सम्बन्ध बताते। कभी मैं कहता, “प्रोफेसर तिवारी जी से मिलने जा रहा हूँ।” वे कहते, “अच्छा-अच्छा तिवारी जी से मिलने। हमारे फादर इन-लॉ (ससुर) के वे बड़े पुराने दोस्त हैं। दोनों साथ-साथ पढ़ते थे। अभी भी वे हमारे प्रति प्रेमभाव रखते हैं। कभी मिल जाते हैं, तो कहते हैं, कभी घर आओ।”

मैं किसी का भी नाम लेता वह उनके चाचा, मामा, ससुर या पिता का दोस्त निकल आता और वे दस-पन्द्रह मिनट उसके सम्बन्धों के बारे बताते। मैं एक दिन कहूँगा, “डाकू जालिम सिंह से मिलने जा रहा हूँ।” तब वे शायद कहेंगे, “अच्छा! वे तो मेरे पिता के अच्छे दोस्त थे। दोनों साथ ही डाका डाला करता थे। जालिम सिंह ने तो मुझे गोद में खिलाया है।”

फिर एक दिन कहूँगा, “भगवान से मिलने जा रहा हूँ।”

वे कहेंगे, “भगवान से। अच्छा-अच्छा। वे तो हमारे चाचा के बड़े अच्छे दोस्त हैं। दोनों स्वर्ग में साथ काम करते थे। मेरा नाम उन्हें बताइए। वे पहचान जाएँगे। मुझे तो भगवान ने गोद में खिलाया है।”

अब अपनी यह हालत है कि उस रास्ते को छोड़कर करीब आधा मील का चक्कर लगाकर घर जाता हूँ। एक दिन वे बाज़ार में मिल गए। कहने लगे, “आजकल आप दिखाई नहीं देते।” मैंने कहा, “बाहर निकलता ही नहीं। घर में ही रहता हूँ।” उन्होंने कहा, “अच्छा, तो फिर घर पर ही दर्शन करूँगा।”

मैं कहकर फँस गया। अगर वे घर पर दर्शन करने आ पहुँचे तो घण्टों बैठेंगे। सोच-विचार के बाद यह तय किया कि मैं फिर उनके घर के सामने से निकलना शुरू कर दूँ। वहीं दर्शन दे दूँ ताकि वे घर पर दर्शन करने न आ पहुँचें।

(बातूनी का सम्पादित अंश)

यह रोज़ सुबह होता। हमारे घर के आसपास की ऊँची छतों, छज्जों, बालकनी, टीवी की तारों पर कबूतर जमा हो जाते। जब हमने छत पर बाजरा डालना शुरू किया वो दाना चुगने आने लगे!

पूनम त्रिखा

कुछ कबूतर और एक कौए की दोस्ती

कभी-कभी तो वो कहीं दिखाई ही न देते पर दाना डालते-डालते मुण्डेर पर आने लगते। दाना डालकर अभी आप हलका-सा पीछे हटे नहीं कि वो पहले एक-दो और फिर झुण्डों में आने लगते। दाना बहुत होता पर कुछ कबूतर आपस में लड़ पड़ते। एक-दूसरे को चोंच से टोंचते। कुछ आगे झुककर गुटर-गूँ करते अपने शरीर को फुलाकर व सिर को आगे-पीछे घुमाते हुए दूसरे कबूतरों को भगाने की कोशिश में रहते। एक दिन मैंने देखा कि कुछ कबूतरों के पैरों की उँगलियाँ नहीं हैं। इन्हें दूसरे कबूतर दाना चुगने में खूब परेशान करते।

कबूतरों की देखा-देखी दो गिलहरियाँ भी आने लगीं। पहले वो दूर से देखती रहीं फिर कबूतरों के उड़ते ही इधर-उधर बिखरे दाने खाने लगीं।

दिन बीतते रहे। धीरे-धीरे कबूतरों और गिलहरियों में जान-पहचान हो गई। अब किसी को किसी का डर न था। दानों के साथ मिट्टी के एक बर्तन में पानी भरा रहता। एक दिन एक कौआ छत पर आया। उसने बरतन से पानी पिया और उड़ गया।

फिर वह (शायद वही!) अकसर आने लगा। आता, पानी पीता और चला जाता। कभी-कभी वह अपने साथियों को भी पानी पीने के लिए साथ ले आता। जैसे उसे पूरा यकीन हो कि पानी यहाँ ज़रूर मिलेगा। कबूतर कौए के आते ही पीछे हट जाते। जब कभी कौआ दाने खाने की कोशिश करता तो एक तरफ वह होता और दूसरी तरफ कुछ दूरी पर कबूतर।

एक दिन वह आया और पानी पीकर चला गया। थोड़ी देर बाद वह फिर आया। उसकी चोंच में एक सूखी रोटी का टुकड़ा था। उसने रोटी के टुकड़े को पानी से भरे बरतन में छोड़ दिया। रोटी जैसे ही थोड़ी नरम पड़ी होगी उसने उसे खा लिया। और फिर चला गया। पास ही बाजरा खाते कबूतरों ने कौए को ऐसा करते देखा। उन सभी ने गुटर-गूँ करते न जाने क्या साझा किया और उड़ गए।

सुबह होते ही रोज़ की तरह छत पर बाजरा बिखरा था और पानी का बरतन भी भरा हुआ था। पास ही रोटी के कुछ टुकड़े पड़े थे। बाकी दिनों की तुलना में आज कबूतर ज़्यादा थे। कुछ लड़ने में व्यस्त थे – एक-दूसरे को अपने पंख फड़फड़ा कर मार रहे थे। उनमें से कई कबूतर एक-दूसरे को छत पर दौड़ा-दौड़ा कर भगा रहे थे। कुछ बस बाजरा खाने में व्यस्त थे। और कुछ रोटी को पानी में नरम करके खा रहे थे। तभी उन्होंने कौए को अपनी ओर आता देखा और वहाँ से हट गए। कौआ उसी तरह पानी के बर्तन के मुहाने पर बैठ नरम हुई रोटी को खाने लगा। अचानक कौए ने काँव-काँव कर कुछ कहा और उधर कबूतरों ने भी गुटर-गूँ कर शायद उसका जवाब दिया। मानो एक-दूसरे को धन्यवाद कह रहे हो – कौआ उस रोटी के टुकड़े के लिए तो कबूतर रोटी के टुकड़े को नरम करने का तरीका बताने के लिए।

आजकल कौआ रोज़ आने लगा है। काँव-काँव और गुटर-गूँ की जुगलबन्दियों से हमारी छत आबाद हो रही है।

कौओं की चोंच कबूतरों से ज़्यादा लम्बी होती है। दाना चुगने के लिए उन्हें अपनी चोंच को तिरछा करना पड़ता है। शायद इस मुश्किल से बचने के लिए वह रोटी के टुकड़े को चोंच में दबाकर लाता है। कुछ खुद तो खाता ही है कुछ कबूतरों के लिए बर्तन में छोड़ जाता है। कभी-कभी कबूतर भी छत पर पड़ी रोटी के टुकड़ों को उसके लिए पानी में भिगो देते हैं।

चींटी की छाया में

फरवरी

सुशील शुक्ल

फरवरी कुछ पतझड़ से याद आता है। कुछ फूलों से। जब नए-नए पत्ते आते तो उनके आने की खुशी होती। थोड़ी कोंपलें पेड़ में आतीं। थोड़ी कोंपलें मन में भी आतीं। रास्ते में गिरे पत्ते को देखते तो मन में भी एक पत्ता झर जाता। पीले पत्ते को देखते तो अकसर पत्ता पूरा पीला होकर नहीं गिरता था। उसमें थोड़ी हरी बूँदें बची रहतीं। पूरा पीला होकर सब पत्ते गिरते तो नए पत्ते भी शायद पीले आते। इसलिए पत्ते अपना कुछ हरा रंग बचाकर गिरते। और इसी बचे हरे रंग से पेड़ पर नए पत्ते आते हैं। पत्ते नीचे गिरते पर पेड़ उन्हें देखने झुक न पाता। हर बार वह पत्ते खोकर थोड़ा और ऊँचा जाता था।

पत्ते खो जाते। चीज़ें खो जातीं। लोग खो जाते। जो खो जाता वह खोकर किसको मिलता?

मैं चींटी को देखता। दिन में उसकी छोटी-सी छाया उसके साथ चलती। कभी-कभी इतना छोटा हो जाने का मन करता कि एक चींटी की छाँव में सो सकूँ। रात भी एक परछाई ही तो है? तो मैं एक इतनी छोटी चीज़ होना चाहता जिसके लिए चींटी की परछाई रात जैसी हो। यह चींटी रात होती। इस चींटी रात का एक चींटी दिन होता। आधे क्षण का दिन। लोग कहते हैं कि एक क्षण में जीवन है। मैं सोचता हूँ उन्होंने किस जीव की परछाई की रात बनाई होगी?

चित्रः नीलेश गहलोत

फरवरी का पतझड़ इस महीने के कैलण्डर पर भी दिखता। लाख कोशिश के बाद भी उसका कोई न कोई दिन गिर ही जाता। एक दिन का कम हो जाना छोटी बात न लगती। एक दिन आएगा ... हर बात पूरी होने के लिए इस एक दिन के लिए रुकी रहती। ये जो एक दिन फरवरी से झर गया है यह वही हमारे सपनों के पूरे होने का एक दिन तो नहीं है!

मुझे हमेशा एक से ज़्यादा दिलचस्प आधा लगता। दो आधे मिलकर एक हो जाते। और एक टूटकर दो आधे-आधे बन जाता। ये और बात है कि कोई चीज़ आधी न होती। चीज़ें एक ही नज़र आतीं। आधा कप न होता और न आधी चाय होती। पर कोई भी कट या आधा कप चाय माँग लेता। आधा कप चाय माँगकर कोई चायवाला मुझे कभी एक कप भर चाय दे देता। मुझे उस पर बड़ा प्यार आता। कि उसके लिए यह जो कप है वह अभी आधा ही बना है। आधा और बनेगा। मैं उसे एक पूरी चाय के पैसे देता तो वह आधी चाय के पैसे काटकर बाकी मुझे लौटा देता। और कहता, "आपको आधी चाय ही दी है।"

"लेकिन मैंने तो पूरी चाय पी है!" यह कहकर मैं उसके लौटाए पैसे उसे ही वापिस कर देता।

मौसम में एक तरफ पतझड़ रहता तो दूसरी तरफ

फूलों की बहार आई रहती। बगीचे फूलों से भरे रहते। वे फूलों की जेल की तरह लगते। वे मैदानों में, पहाड़ों में, खेतों की मेड़ों पर, चरागाहों में, पड़ती ज़मीनों में अपनी तरह से खिले रहते। एक सूखी-सी घास जो मुश्किल से खड़ी हो पाती। वह खड़ी रहती। खड़ी रहती। खड़ी रहती। फिर फूल आ जाते। सफेद। हिम्मत जैसे फूल।

हर जगह कुछ न कुछ होता। कहीं भी नज़र डालो वह खाली नहीं आती थी। पर क्या पता कभी आ जाए! मौसमी फूल किसी ऐसी जगह भी हो सकते थे। कहीं यूँ ही बैठने को कोई पत्थर सरकाओ तो उसकी ठीक बगल में एक फूल खिला नज़र आ जाता। बगीचे के फूल किसी बड़े स्कूल पहुँच गए बच्चों की तरह लगते। और मौसमी फूल स्कूल न पहुँच पाए या स्कूल के सताए स्कूल जाने के लिए निकले पर कहीं और ही चले गए बच्चों की तरह लगते। अकसर लोग माली की तरह बगीचे के फूलों को सींचने में लगे रहते। मौसमी फूल शरमाए से, चुप-चुप से खिलते। पर वे बड़ी संख्या में खिलते। वे जितना बढ़ पाते उतना बढ़कर ही खिल जाते। पत्तियाँ अपनी रौनक दे देतीं, तना दुबला हो जाता। कई बार मिट्‌टी की और कई बार धूप की तंगी झेलते। और कई बार तो पानी बस दो बूँद मिलता। पर इन सबको जोड़कर मौसमी फूल आँसू की तरह चमचमाते खिलते।

ज़मीन को, उसकी मिट्‌टी को दबोचकर शहर बसते। रास्ते होते। उससे कुछ लोग कहीं पहुँच जाते। कुछ लोग उसी से लौट आते। हालाँकि लौटने के लिए कोई रास्ता न बनता। हमेशा कहीं चले जाने के

(शेष भाग पेज 75 पर)

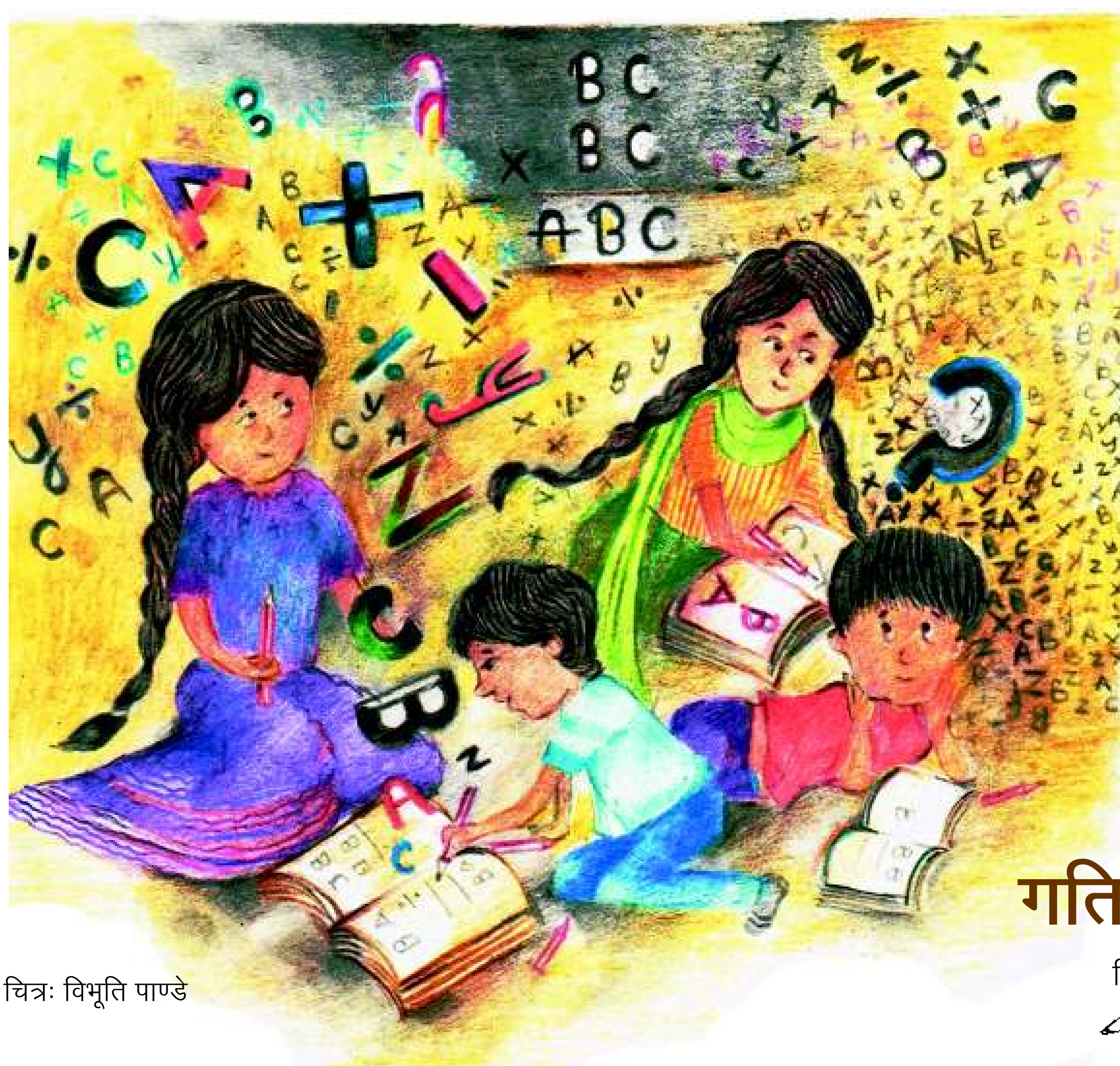

चित्रः विभूति पाण्डे

एक गतिविधि

विवेक मेहता

जोड़, घटाना, गुणा, भाग – क्या तुम्हें आसान और बोरिंग लगते हैं? मुझे भी लगते थे। फिर मेरे हाथ लगी एक किताब। इसमें पहेलियों को हल करने के दौरान जोड़, घटाना, गुणा, भाग एक नए ही रूप में मिले। उनमें से कुछ सवालों और पहेलियों को हम चकमक के आनेवाले अंकों में देखेंगे।

तो शुरू करते हैं इस बार की पहेली से जो Alphametics की है। Alphametics में दिए गए सवाल की संख्याओं के अंकों को अक्षरों से बदल दिया जाता है – किसी खुफिया कोड की तरह। हर अक्षर एक अलग अंक (0, 1, 2 ...... से लेकर 9 तक) को दर्शाता है। स्वाभाविक है कि सवाल में अलग-अलग जगह पर आए समान अक्षर एक ही अंक को दर्शाते हैं। तुम को पता लगाना है कि सवाल में कौन-कौन-सी संख्याएँ शामिल हैं। सवाल हैं:

```
  BC
×BC
------
 ABC
```

```
  XY
+YX
------
 ZXZ
```

याद रहे एक सवाल में आया एक अक्षर एक ही अंक को दर्शाएगा। चाहे वो कितनी ही जगह पर आ जाए। जैसे पहले सवाल में तीनों संख्याओं में आया अक्षर B एक ही अंक को दर्शा रहा है। और A, B व C अलग-अलग अंक हैं। और हाँ, अपने जवाबों के साथ कारण भी भेजना कि तुम्हारा जवाब सही क्यों है।

टैक्स

लियो टॉलस्टॉय

(अमीन - टैक्स वसूल करनेवाला अफसर

ग्रुश्का - सात साल की एक लड़की)

(अमीन एक टूटी-फूटी झोंपड़ी में प्रवेश करता है। वहाँ ग्रुश्का अकेली बैठी है। अमीन चारों ओर देखता है।)

अमीन - अन्दर कोई नहीं है?

ग्रुश्का - माँ गाय को लेकर गई हैं। और पिताजी मालिक की चौपाल पर होंगे।

अमीन - अच्छा, अपनी माँ से कह देना कि अमीन साब आए थे। कहना कि वे तीन बार आ चुके हैं। और अगर वो रविवार तक टैक्स के रुपए नहीं देती हैं तो मैं गाय ले जाऊँगा।

ग्रुश्का - तुम हमारी गाय ले लोगे! क्या तुम चोर हो? हम तुम्हें उसे लेने न देंगे।

अमीन - (मुस्कराते हुए) वाह! तुम तो बड़ी चतुर लड़की हो। तुम्हार नाम क्या है?

ग्रुश्का - ग्रुश्का

अमीन - अच्छा ग्रुश्का तुम अच्छी और तेज़ बच्ची हो। लेकिन मेरी बात सुनो! अपनी माँ से कह देना कि मैं चोर तो नहीं हूँ पर मैं गाय ले जाऊँगा।

ग्रुश्का - जब तुम चोर नहीं हो तो हमारी गाय क्यों ले जाओगे?

अमीन - इसलिए कि कानून जो कुछ माँगता है उसे चुकाना ही पड़ेगा। मैं टैक्स के बदले तुम्हारी गाय ले लूँगा।

ग्रुश्का - टैक्स से तुम्हारा क्या मतलब है?

अमीन - तुम तो बड़ी चालाक लड़की मालूम पड़ती हो, टैक्स क्या है? ज़ार (राजा) अपनी प्रजा को जो कुछ देने, अदा करने का हुक्म देते हैं, वही टैक्स है।

ग्रुश्का - किसे अदा करने को?

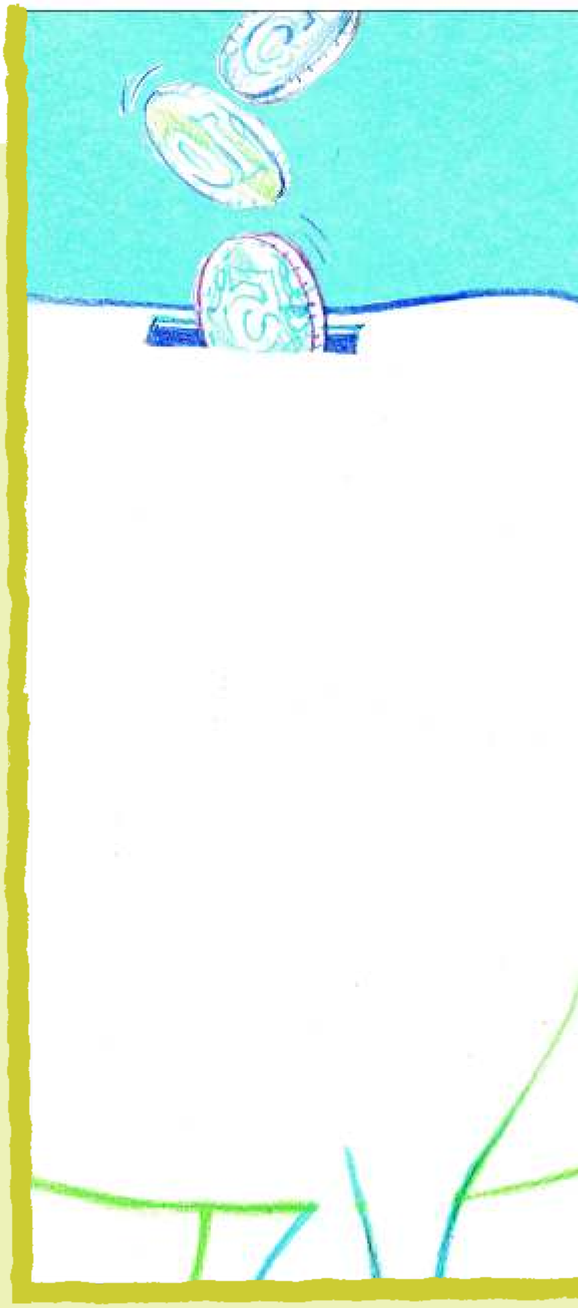

अमीन - किसे! अरे, खुद ज़ार को और फिर वे तय करते हैं कि वह रुपया किस काम में खर्च हो।

ग्रुश्का - क्या ज़ार गरीब हैं? हम गरीब हैं और वो मालदार हैं। तब फिर वो हम से टैक्स क्यों लेते हैं?

अमीन - अरी मूर्ख! वह अपने लिए ये रकम नहीं लेते हैं। उन्हें हमारी ज़रूरतों के

चित्रः शशि शेट्ये

लिए, अफसरों के लिए, फौज़ के लिए, शिक्षा के लिए हमारी ही भलाई के लिए ज़रूरत पड़ती है।

ग्रुश्का – अगर तुम हमारी गाय ले जाओगे तो हमारा क्या भला होगा? हमारा तो कोई भला न होगा?

अमीन – जब तुम बड़ी हो जाओगी तब इसे समझोगी। अच्छा, जो कुछ मैंने कहा है, अपनी माँ से कह देना। भूलना नहीं।

ग्रुश्का – मैं ऐसी वाहियात बात उनसे नहीं कहूँगी। अगर तुम्हें या ज़ार को किसी चीज़ की ज़रूरत हो तो खुद काम करके पैदा करो। और हमें जिसकी ज़रूरत होगी हम उसे करेंगे।

अमीन – आह! यह लड़की बड़ी होकर ज़हर की पुड़िया निकलेगी।

घरों का बनना और निर्माण सामग्री कैसे-कैसे विकसित हुई।
यह सामग्री घरों-इमारतों के डिज़ाइन पर किस तरह पाबन्दी लगाती हैं,
और सबसे अहम बात यह कि खुद डिज़ाइन भी कैसे इनकी हदें बाँध देते हैं।

बड़ी इमारतें

उमा सुधीर

दिल्ली के लोटस टैम्पल, चित्तौड़गढ़ के विजय स्तम्भ, मदुरई के मीनाक्षी मन्दिर के हज़ार खम्भोंवाले हॉल, माण्डू की जामा मस्जिद और सिडनी के ओपेरा हाउस... इन सब में क्या समानताएँ हैं! आखरीवाली को छोड़ यहाँ गिनाई सारी इमारतों को मैंने देखा है। और उन्हें बार-बार देखने की चाह है। ओपेरा हाउस को बस तस्वीरों में देखा है।

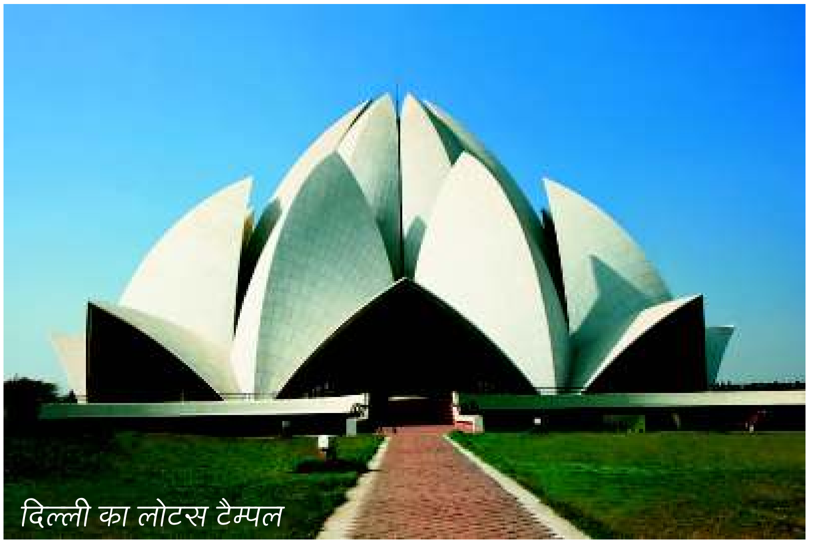

दिल्ली का लोटस टैम्पल

सिडनी का ओपेरा हाउस

इन इमारतों में एक समानता तो यह है कि सभी बहुत विशाल हैं और मेरी पसन्दीदा इमारतों की फेहरिस्त में सबसे ऊपर हैं। मुझे पसन्द होने का कारण इनका आकार तो बिलकुल नहीं है। तो फिर? इसे जानने के लिए हम थोड़ा पीछा जाएँगे और देखेंगे कि घरों का बनना और निर्माण सामग्री कैसे-कैसे विकसित हुई। और यह भी कि यह सामग्री घरों-इमारतों के डिज़ाइन पर किस तरह पाबन्दी लगाती हैं, और सबसे अहम बात यह कि खुद डिज़ाइन भी कैसे इनकी हदें बाँध देते हैं।

शुरू में हम देखेंगे पिछले कुछ लाख सालों में हमारे आवास किस तरह बदले हैं। हमारे पूर्वज जंगलों में रहते थे। कोई शिकारी दिखा तो पेड़ पर चढ़कर पत्तों में छिप गए। अगर उस पर फल लटके मिल गए तो सोने पे सुहागा। पर फिर, इनके कुछ वंशज खुले चरागाहों में आ गए। आगे का इंसानी विकास शायद यहीं हुआ। खुले में सभी तरह के खतरों के बीच रहना बहुत डरावना होता होगा! खासतौर पर रात के वक्त। हमारे पूर्वजों ने इन सब के बीच गुज़ारा किया। तभी शायद उन्हें गुफाओं या आगे की ओर निकली बड़ी-बड़ी चट्टानों के नीचे रहने का ख्याल आया हो।

चट्टानों के नीचे जगह अकसर बहुत कम होती थी। लेकिन अपने आसपास को ज़्यादा सुन्दर, सुखद बनाने की चाह के चलते वो चित्र

लिंटल (चौखट)

भीमबेटका

बनाने लगे। भोपाल के पास भीमबेटका में उनके बनाए चित्र आज भी देखे जा सकते हैं। (यहाँ बड़ी-बड़ी चट्टानें और पत्थर कुदरती रूप से इस तरह जमे हुए हैं कि उनके नीचे रहने की जगह मिल जाती है।)। पत्थरों की एक तरफ की आड़ से भी आदिमानव काफी सुरक्षित महसूस करता होगा।

शुरुआती झोंपड़ियाँ शायद गुफाओं या चट्टानों के नीचे की जगहों को आगे बढ़ाकर ही बनी होंगी। इसमें बाँस, बेंत जैसी सामग्रियाँ भी इस्तेमाल की गई होंगी। जल्द ही स्वतंत्र घर बनने लगे। इसमें कई मुश्किलें भी आईं। पर इनसे निपटने के लिए तकनीक में ज़बरदस्त तरक्की हुई। देखते हैं कैसे...

सबसे पहले दरवाज़ों पर आते हैं। तुमने हज़ारों तरह के दरवाज़े देखे होंगे। छोटे-बड़े सभी तरह के। असल में दरवाज़े इतनी जगह नज़र आते हैं कि इन पर ध्यान कम ही अटकता है। अब जो दरवाज़ा या खिड़की दिखे उस पर गौर करना। थोड़ा थमकर सोचना। तुम्हें नहीं लगता ये दरवाज़े, खिड़कियाँ छोटा ही सही पर क्या कमाल करते हैं! एक खुले हिस्से के ऊपर दीवार है। पर उस दीवार का वज़न टिका किस पर है? हवा की पतली दीवार पर तो नहीं ना? यह लिंटल (चौखट) तकनीक के आने से ही सम्भव हुआ। दो खम्भों के ऊपर रखा लिंटल ही तो दरवाज़ा है। जिस पर दरवाज़े के ऊपर की दीवार का भार टिका रहता है। तुम्हें ऐसा तो नहीं लग रहा कि इस ज़ाहिर-सी बात को बताने के लिए इतना ताम-झाम क्यों? असल में ऐसा है नहीं! उन झोंपड़ियों को देखो जिनमें खम्भे और लिंटल नहीं होते। वहाँ दरवाज़े छत से जा लगते हैं। इस तरह से बने घरों की कुछ सीमाएँ होंगी?

मेरे ख्याल से आर्किटेक्चर या वास्तुकला का यह एक अहम पड़ाव था। दरवाज़ों की यही तकनीक छत बनाने में भी काम में ली जाने लगी – दीवारें बनाईं, उसके ऊपर लकड़ी का बड़ा फट्टा या बाँस रख दिया। इससे बहुमंज़िला इमारतों का बनना सम्भव हुआ। क्योंकि छत मज़बूत होगी तभी तो उस पर एक और मंज़िल खड़ी की जा सकती है। पर क्या हमारे पूर्वज इससे सन्तुष्ट हो गए! ना जी बिलकुल नहीं। उन्हें जल्दी ही इसकी सीमाएँ भी पता चल गईं। कौन-सी सीमाएँ?

पहली है, कमरे का साइज़। अगर दीवारों को किसी चीज़ से ढँककर ही कमरा बनना है तो उस चीज़ की लम्बाई-

वैसे खम्भेवाले इस तरीके से केवल फैले हुए ढाँचे ही नहीं बनते। 15वीं शताब्दी में बना चित्तौड़गढ़ का नौ मंज़िला विजय स्तम्भ भी इसी तरह से बना है। खम्भे-लिंटल और पत्थरों से बनी यह इमारत लाजवाब है।

चौड़ाई से ज़्यादा कमरे का साइज़ नहीं हो सकता। और अगर छत लकड़ी की है तो एक बड़े कमरे के लिए एक बहुत बड़े पेड़ की बलि चढ़ानी होगी। और पेड़ भी लम्बा-पतला नहीं हो सकता। क्योंकि अलग लकड़ी के लट्ठे या फट्टे चौड़े नहीं हैं तो पहली मंज़िल के लिए बहुत सारी सीमाएँ हो जाएँगी। ऐसे में पहली मंज़िल के कमरे के बीच में उछल-कूद मचाते बच्चे खुदा न खास्ता सीधे निचली मंज़िल तक पहुँच सकते हैं।

अब सवाल यह कि अगर लकड़ी की जगह पत्थर इस्तेमाल हों तो क्या हो? इसमें कोई शक नहीं कि पत्थर लकड़ी की तुलना में ज़्यादा मज़बूत है, पर ज़्यादा भारी भी तो है। (कितना दम लगता होगा उसे ऊपर तक ले जाने में उफ! और ऊपर से खतरा भी ज़्यादा। हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा में 1905 में आए भूकम्प में सबसे ज़्यादा पत्थर के मकानों में रहनेवाले ब्रिटिश ही मारे गए। ईंटों या बाँस के मकानों में रहनेवाले इस मामले में किस्मतवाले रहे।) खैर, इस मुश्किल का एक हल तो यह हो सकता है कि कमरे के बीच में एक खम्भा गाड़ दिया जाए। मदुरई के मीनाक्षी मन्दिर का हज़ार खम्भोंवाला विशाल हॉल इसका एक बढ़िया नमूना है। पर अगर ऐसे किसी हॉल में कोई फिल्म चल रही हो तो सारा मज़ा किरकिरा हो जाए। पर घबराइए नहीं, मर्ज़ हैं तो दवाएँ भी तो हैं ना!

हज़ार खम्भोंवाला विशाल हॉल

मेहराब त्रिआयामी बन जाए तो गुम्बद बन जाता है।

की-स्टोन

मेहराब में बल (या भार) सीधे नीचे लगने की बजाय आसपास फैल जाता है। मेहराब तराशे पत्थरों से बनाई जाती है। ये पत्थर ऊपर की तुलना में नीचे कम चौड़े होते हैं। इन पत्थरों को दोनों तरफ से सटा-सटाकर जोड़ते जाओ तो एक गोल आकृति उभरती जाती है। इन्हें थामने के लिए नीचे से सहारा दिया जाता है। जब बीच में आखरी पत्थर रखा जाता है तो यह दोनों तरफ के पत्थरों पर दबाव बनाता है। इसी दवाब से मेहराब को उसकी मज़बूती मिलती है। और यह भारी वज़न को झेल पाता है। चूँकि बीच का पत्थर मेहराब की डिज़ाइन के लिए इतना महत्वपूर्ण होता है कि यह की-स्टोन कहलाता है।

बात इमारतों की हो रही है तो रोमवासियों को एक नायाब चीज़ का श्रेय मिलना ही चाहिए। और वो है मेहराब यानी आर्च। मेहराब इमारत को खूबसूरत तो बनाती ही है उसके ढाँचे को पुख्ता भी बनाती है। यानी इमारत को मज़बूती उसे बनाने में इस्तेमाल हो रही सामग्री के अलावा मेहराब से भी मिलती है। जब दो दीवारों की दूरी को पाटने के लिए पत्थर या लकड़ी के लट्ठे लगाए जाते हैं तो इन्हीं पत्थरों या लकड़ी से तय होता है कि वे कितना भार सहन कर सकते हैं। इधर वज़न बढ़ा, उधर वो दो टुकड़े हुआ। कभी-कभी तो वे खुद के ही भार से टूट सकते हैं। पर मेहराब का डिज़ाइन भार को किसी एक जगह पर केन्द्रित न करके फैला देता है। (देखें बॉक्स)। यानी अब आपके पास एक ऐसा डिज़ाइन था जिससे वास्तुकला इस्तेमाल होनेवाली सामग्री की मज़बूती से बँधी नहीं रही। तो रोमवासियों ने दिल खोलकर पुल और जल-निकासी के लिए ढाँचे बनाए। पर जाने क्यों भारत में मेहराब इस्लामी शासकों के बाद ही आया!

मेहराबों में जिस विचार को इस्तेमाल किया वो तो प्रकृति में कब से दिख रहा था। एक अण्डे को अपने हाथ से तोड़ने की कोशिश करो। (अगर टूट जाए तो बढ़िया आमलेट बनाकर खा लेना।) और फिर खाली अण्डे के छिलके को उसकी भीतरी सतह की तरफ से दबाओ। आसानी से टूट गया ना! यहाँ तक कि इतने नाजुक दिखनेवाले साबुन के बुलबुले भी टिके रहते हैं क्योंकि वायुमण्डलीय दाब मेहराबदार सतह पर नीचे की ओर दबाव डालता है। अगर हम आसपास का दाब कम कर दें तो बुलबुला पल भर में फूट जाएगा। क्योंकि तब उच्च दाब अवतल (उल्टी मेहराब) सतह पर दबाव डाल रहा होगा।

मेहराब त्रिआयामी बन जाए तो गुम्बद बन जाता है।

भट्टी में डालें और देखें क्या मज़बूत ईंट आपको मिलती है जो सदियों चलती रहेगी। सिन्धुघाटी की ईंटों का इस्तेमाल ब्रिटिश लोगों ने रेलवे लाइन बिछाने में किया। और ऐसी जगहें जहाँ पत्थर नहीं मिलते (जैसे गंगा के मैदानों में) वहाँ बड़ी इमारतें इन्हीं से तो बनती हैं। और बंगाल में तो प्राचीन मन्दिर ईंटों या टेराकोटा से ही बने हैं।

कुल जमा यह कि खम्भे-लिंटल की तुलना में मेहराब ज़्यादा बड़ी दूरी को पाट सकती है। जबकि दोनों में सामग्री वही इस्तेमाल होती है। और अगर मेहराब त्रिआयामी बन जाए तो गुम्बद बन जाता है। तुमने देखा तो होगा ही कि गुम्बद कितने बड़े क्षेत्र को ढँक देता है। कर्नाटक का गोल गुम्बद सबसे विशाल गुम्बदों में से एक है पर माण्डू के गुम्बद भी कम नहीं हैं! गुम्बद की मज़बूती हैरतअँगेज़ है। यहाँ एक ऐसे वास्तुकार की कहानी सुनाती हूँ जो विशाल गुम्बद बनाता था। स्थानीय अफसरों को यकीन नहीं आया कि वो इतना भार झेल पाएगा तो उन्होंने ज़ोर दिया कि उसे सहारा देने के लिए खम्भे भी बनाए जाएँ। वास्तुकार को अपने डिज़ाइन पर यकीन था। पर वो जानता था कि उसे पास तो अफसर ही करेंगे। इसलिए उसने खम्भे बनाकर अफसरों को सन्तुष्ट कर दिया। पर उसने खेल यह किया कि उन खम्भों को गुम्बद से छुआया ही नहीं। पर उन्हें खड़ा यूँ किया गया कि वो वहाँ हैं।

अब तक हमने जिन इमारतों को ज़िक्र किया है वो सालों पहले बनी हैं। इनमें लकड़ी, पत्थर जैसी सामग्रीयाँ इस्तेमाल हुई हैं। जिन्हें चूना या डामर आदि से जोड़ा जाता था। पर ईंटों का इस्तेमाल भी सदियों से हो रहा है। बड़ी कमाल की चीज़ है यह! आप मिट्टी जैसी नाचीज़ को

तो अब कुछ आज की बात की जाए। आज अधिकाँश इमारतें कॉन्क्रीट की बनती हैं। यह सही है कि सीमेन्ट उद्योग प्रदूषण का एक बड़ा कारण है – पर यह भी तो देखें कि इन्हीं की बदौलत दिल्ली का लोटस टैम्पल और सिडनी का ओपेरा हाउस आकार ले पाया। किसी और सामग्री से यह कतई सम्भव न था। (हालाँकि सुदृढ़ कॉन्क्रीट की बजाय कोई धातु का इस्तेमाल भी किया जा सकता था पर गर्म दिनों में उसमें जाना किसी भट्टी में जाने से कम न होता। वैसे कॉन्क्रीट की मज़बूती धातु पर ही टिकी होती है।) और इन इमारतों के बारे में जिस चीज़ की मैं खास तौर पर कायल हूँ वो यह है कि वास्तुकारों ने किस तरह इस्तेमाल की गई सामग्री की मज़बूती से इतने भव्य, हैरतअँगेज़ डिज़ाइन को आकार दिया है। जब कॉन्क्रीट का इस्तेमाल कुछ ऐसा बनाने में किया जाए जिसे पत्थर या ईंट से भी बनाया जा सकता है तो इसमें महान क्या! कुछ वास्तुकार तो सामग्री और डिज़ाइन दोनों की खासियतों को उनकी पूरी गुँजाइश तक खींच ले जाते हैं।

सर्दियाँ

पद्मजा गुनगुन

इस बार पूर्णिमा का चाँद पिछली बार से बड़ा है, इतना बड़ा कि लगता है जैसे गोल तालाब के चारों ओर पानी के पेड़ भी उग आए हैं तो पेड़ों जितनी जगह चारों ओर बढ़ गई है... और अब पेड़ों के पत्ते धीमे-धीमे झर रहे हैं। चाँद पतझड़ में झर रहा है। इक्के-दुक्के पत्ते लगातार झर रहे हैं। कभी कुछ ज़्यादा चाँद के पत्ते झरते तो ठण्ड एक पूरी डाली जितनी बढ़ जाती और पूरे महीने रहती। पौष का महीना शुरू हुआ। पौष को हिन्दी में पूस भी कहते जिसमें कड़ाके की ठण्ड होती और रात में ओस गिरती। रात में गिरी ओस सुबह तक पत्ती की ढलान पर टिकी रहती, और सुबह धूप के हलके धक्के से फिसल जाती। सरसों पर से शायद ओस फिसल न पाती तो वे धूप में यूँ चमकते जैसे सूरज। सरसों को देखते तो गुनगुनाहट महसूस होती। पीली तितली सरसों के खेत में पहुँचती तो उसे लगता कि वह उसके जैसी खूब सारी तितलियों के बीच आ गई हो। दिन में कोई न कोई दोस्त अपनी बात कहता हुआ बीच में ज़ोर से छींकता और फिर बताता कि "रात में रज़ाई हलकी-सी उघड़ गई और नींद में पता न चल पाया..।" ऐसा कई नींदों में होता और फिर हर सुबह एक स्वेटर ज़्यादा पहनते। मूँगफली लेने के खूब देर बाद तक ठेले के पास खड़े रहते। कढ़ाई में सिकती मूँगफलियों को देखते हुए हाथ भी सेंकते रहते और फिर मूँगफलियों के साथ हाथ भी जेब में डाले घूमते। पौष की धूप में आकाश इतना नीला होता कि उसमें रंग-बिरंगी पतंगें दूर से उड़ती दिखतीं। नीली पतंग, आकाश में उड़ते ही घुल जाती और उड़ानेवाले को लगता कि आज वाली पतंग आकाश जितनी बड़ी है। आकाश जितनी बड़ी पतंग में बाकी पतंगें यूँ लगतीं जैसे झील पर बारिश हो रही हो... पतंग की बूँदें आकाश की पतंग में मिल रही हों। धूप, दोपहर में कभी-कभी तेज़ भी लगती तो पतंग की छाया में खड़े हो जाते...। अब धूप पतंग से गुज़रकर आई होती। पतंग की छाया में खड़े हुए शाम हो जाती तब पता चलता कि हर जगह छाया हो गई। मन करता, "अरे, थोड़ी-सी और धूप खानी थी।" इस तरह हर दिन जब थोड़ी और धूप खानी होती, तब तक धूप चली गई होती। दुशाले में सब अपने गर्म कमरे में जाने की तरह छिपते और चेहरे के आगे एक छोटी खिड़की बनाकर उससे बाहर झाँकते। थोड़ी-सी आग के पास इकट्ठे हो जाते और अपने प्रिय किस्से सुनाया करते। कुछ किस्से पिछली सर्दियों में सुनाए हुए भी सुनाते, इससे पिछली सर्दियों की गर्माहट इन सर्दियों में भी आती। चाँद धीमे-धीमे झरता रहता और ठण्ड डाली-डाली बढ़ती जाती . .

चित्र : दिलीप चिंचालकर

मेरा पन्ना

मेरा अनुभव

मेरा नाम प्रीति है। मैंने बसन्त की किताब में से एक कहानी पढ़ी है। उस कहानी का नाम है मिठाईवाला। इस कहानी में मुझे उस फेरीवाले की आवाज़ बहुत पसन्द आई क्योंकि वह बहुत ही मीठे स्वरों में कहता था और जिस तरह बच्चों और बड़ों से वह बातचीत करता था। जिस तरह का वह सब लोगों के साथ व्यवहार करता था वह भी मुझे बहुत अच्छा लगा। जब मैंने इस मिठाईवाले पाठ को पढ़ा तो मुझे महसूस हुआ कि हमारे गाँव में जो फेरीवाले आते हैं जिन्हें हम और हमारे गाँव के लोग कबाड़ी कहकर पुकारते हैं। और उनकी कोई औकात नहीं समझते हैं। उन्हें अपने से नीचा समझते हैं। लोगों की नज़र में फेरीवालों की कोई इज़्ज़त नहीं होती है। और बहुत कम लोग ऐसे हैं जो उनकी इज़्ज़त या मान करते हैं और उनसे अच्छा व्यवहार करते हैं। मैंने जब इस पाठ को नहीं पढ़ा था तब भी मैं फेरीवालों को बालवाले भैया, लोहा-लंगड़वाले भैया या अंकल कहकर बुलाती थी। कबाड़ी कहकर नहीं। जब मैंने इस पाठ को पढ़ा तो मुझे लगा कि फेरीवाले की भी अपनी ज़िन्दगी होती है। अपना परिवार होता है। वो भी अपना जीवन जीते हैं। और हम भी। कुछ लोग मानते हैं कि उनका जो व्यवसाय है वो छोटा है। लेकिन वह व्यवसाय छोटा नहीं है। लोगों की सोच छोटी है। इसलिए लोग उन्हें कमज़ोर या छोटा समझते हैं। मुझे यह समझ में आया कि हमें उनकी इज़्ज़त करनी चाहिए।

— प्रीति वर्मा, अजीम प्रेमजी विद्यालय टोंक, राजस्थान

वसन्त आगमन

नीले-नीले नभ के नीचे
वसुधा हुई आज अलंकृत
वसन्त आज फिर आया है
धरती को करने सुशोभित
जीवन गतिशील हुआ
परिन्दे लगे चहचहाने
रंग-बिरंगे फूल हैं देखो
पृथ्वी को महकाते
हरे-भरे ये वन और उपवन
सुन्दर क्यारियाँ, गड़गड़ाते गगन
मेघ मालाओं का मन-भावन चमन
हर लिया वसन्त ने सभी का मन

- अभिनव द्विवेदी, ग्यारहवीं,
बाँबूसा पुस्तकालय लोहित, अरुणाचल प्रदेश

- उदय प्रताप भदौरिया, संस्कार वैली, भो

होली आई

होली आई, होली आई
रंग-बिरंगी होली आई
मार्च महीने में होली आई
बच्चों-बूढ़ों की होली आई
हँसती-गाती होली आई
बड़ी उमंग से होली आई
गुलाल उड़ाने होली आई
होली आई होली आई
मेरे मन को भाती होली
रंग बरसाने आई होली
दौड़ने-भागने आई होली
मीठा खिलाने आई होली
होली आई होली आई

– मनीषा लाल कटारिया, चौथी, रायगढ़

—निहारिका दोईफड़े, साढ़े छह वर्ष, गरवारे बाल भवन पुणे

एक घर में हैं कमरे हज़ार
हर कमरे में पहरेदार
ऐसा अनोखा घर है बनाया
ना मिट्टी ना चूना लगाया (मधुमक्खी का छत्ता)

एक दुखभरी घटना

एक दिन जब हम रात को 8 बजे दरवाजा बन्द करके सो रहे थे तो फोन आया। मेरी माँ ने फोन उठाया तो

एक आदमी बोला, “मैं गिरीडीह से पुलिस बोल रहा हूँ।” मेरी माँ को लगा कि मेरे पापा मज़ाक कर रहे हैं।

उन्होंने फोन मेरी छोटी बहन को दे दिया। फिर पता चला कि वह सच में ही पुलिस था। उन्होंने बताया कि मेरे पापा का दुर्घटना में देहान्त हो गया है। फिर दूसरे दिन हम ट्रेन में बैठकर गाँव के लिए निकले। मेरी नानी और मेरी माँ रास्ते भर रोते गए। आखिर में हम गाँव पहुँच गए। फिर हमने लाश देखी। हम सब ज़ोर-ज़ोर से रो रहे थे। हम दस दिन तक वहाँ रहे। दसवें दिन श्राद्ध के बाद हम घर वापस आए। मेरी माँ का कहना था कि जब एक दिन एक साधु से मेरे पापा के बारे में कुछ बताने को कहा तो साधु ने कहा था कि मेरे पापा की मृत्यु बाल काटने पर होगी। तो मेरी माँ ने मेरे पापा को मना किया बाल काटने को पर मेरे पापा को इन सब पर भरोसा नहीं था इसलिए मेरे पापा ने बाल काट दिए। और उनकी मृत्यु हो गया। पर मेरा मन इसे मानने को नहीं कर रहा है।

– कशिश राय, पाँचवीं, उत्क्रमित प्राथमिक विद्यालय डुकासाई

-अनन्या जैन, इन्दौर

लकड़ी के घोड़े पर
लोहे की लगाम
(दरवाज़ा)

ाल

मेरा बचपन

जब मैं छोटी थी
शरारतें करती थी कितनी,
अब जब बड़ी हो गई हूँ,
मेरे माँ-बाप रखने लग गए हैं,
उम्मीदें उतनी,
पर वह कभी समझ न पाएँ मुझको,
कि आखिर चाहती हूँ मैं क्या?
हर दम मुझको कहते रहे, सुनाते रहे,
अगर पढूँगी नहीं तो करूँगी क्या?
मगर मेरा क्या?
क्या कभी उन्होंने सोचा,
क्या करना चाहती हूँ मैं?
क्या बनना चाहती हूँ मैं?

–खुशी सिब्बल, छठी,
डी.पी.एस, लुधियाना

-गार्गी शिंगणे, तीसरी, सेंट जोसेफ स्कूल, भोपाल

खूब रोया

एक चिड़िया और एक पेड़ दोनों दोस्त थे। चिड़िया उस पेड़ से आम खाती और उसी पेड़ पर रहती थी। एक दिन बहुत सारी चिड़िया वहाँ आ गईं और सारे आमों को खा गईं। उस चिड़िया को बहुत तेज़ भूख लगने लगी। पेड़ ने कहा, “जब तक फल नहीं आते तुम दूसरे पेड़ों से खा लिया करो।”

चिड़िया उड़ती हुई दूसरी जगह पर गई। उसे एक तालाब के किनारे एक बेर का पेड़ मिला। चिड़िया वहाँ पर बेर खाने लगी। उस तालाब में एक मगरमच्छ रहता था। एक दिन चिड़िया पेड़ से पककर झड़े बेरों को खा रही थी। तो मगरमच्छ ने उसे देख लिया और चिड़िया को पकड़कर खा गया। यह बात जब पेड़ को पता चली तो वह खूब रोया।

–मनीषा, 6 वर्ष, जगनपुरा,
सवाई माधोपुर, राजस्थान

-गुनिका राय, तीसरी, डीपीएस, लुधियाना

बन्दर और पेड़ की डाल

एक तालाब के किनारे एक बरगद का पेड़ था। उस पर बहुत सारे बन्दर रहते थे। एक रात आकाश में चाँद निकला हुआ था। उसकी छाया पानी में चमक रही थी। एक बन्दर ने कहा, "चाँद पानी में गिर गया है। इसे निकालना चाहिए।" उसकी बात सुनकर एक बूढ़ा बन्दर ने उसे ऐसा करने से मना किया। परन्तु उन्होंने उसका कहना नहीं माना। पहले एक बन्दर डाल पकड़कर लटक गया। फिर दूसरा बन्दर पहले बन्दर की दुम पकड़कर लटक गया। इसी तरह बन्दर एक के बाद एक पूँछ पकड़ते-पकड़ते पानी के पास पहुँच गए। सबसे नीचे वाले बन्दर ने जैसे ही पानी में हाथ डाला तो पेड़ की डाली टूट गई और सारे के सारे बन्दर ठण्डे पानी में गिर पड़े।

—रिज़वान अंसारी, सातवीं, बलिया, उ. प्र.

बिना पैसे के कुछ नहीं मिलता

एक तोता था और एक तोती थी। एक दिन वो दोनों बाज़ार गए। बाज़ार में उनको एक मिर्च मिली। तभी एक दुकानदार आया और बोला, "अरे तोता-तोती तुम दोनों मेरी मिर्च को ऐसे क्यों देख रहे हो?" तभी तोती बोली, "हमें बहुत भूख लगी है।" दुकानदार बोला, "अरे यहाँ तो बिना पैसे के कुछ नहीं मिलता, जाओ।" और वो दोनों चले गए।

—पायल सिन्हा, पाँचवीं,
अज़ीमप्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़

- माइल चैन्नई

—दक्ष, पहली, लीलावती स्कूल दिल्ली

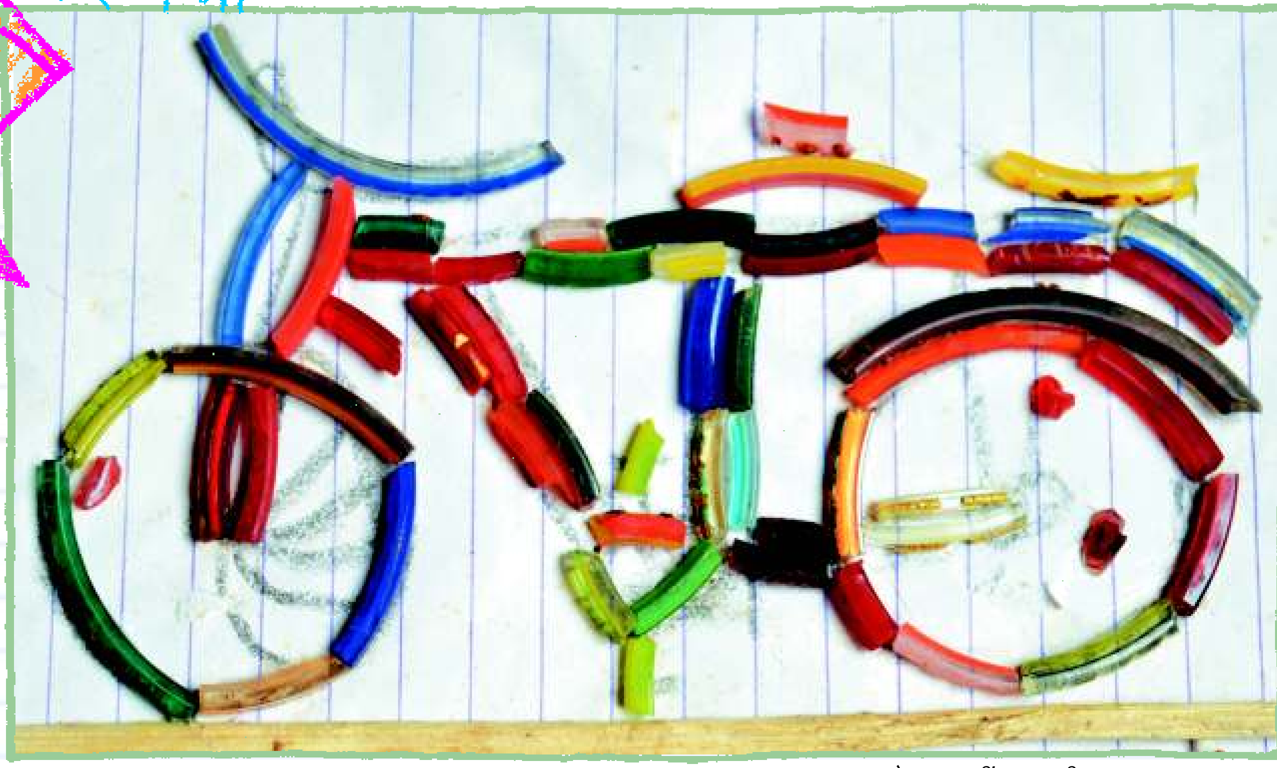

– रामनाथ उइके, सातवीं, भवरदी कला, हरदा, म. प्र.

– कादम्बरी, नौवीं, केन्द्रीय विद्यालय, हाथीबड़कला, देहरादून

सपना एक खाली किताब

किताबों की एक दुकान थी। उसकी हर किताब मज़ेदार कहानियों से भरी थी। सिवाए एक के। उसका नाम था रूखी। पर वह हिम्मत हारनेवाली किताबों में से तो थी नहीं। रोज़-रोज़ वह ऐसी किताबों को ढूँढती जो उसे कहानी डोनेट (दान) करे। एक दिन उसे एक किताब मिली। उसका नाम रज़िया था। उसने उससे पूछा, "क्या तुम मुझे कुछ कहानी दे सकते हो?" "नहीं, मेरी हर कहानी 30 पेज की है। और तुम्हारे पास 20 पेज हैं।" फिर वह आगे बढ़ी। उसे एक किताब दिखी। उसने पूछा, "तुम मुझे कहानी दोगे?" उसने कहा, "तुम अभी छोटे हो। और मेरे पास डरावनी कहानी है। तो तुम डर जाओगे।" फिर वह दुबारा आगे बढ़ी। उसे एक किताब मिली। पर उसने कहानी देने से मना कर दिया। वह थक गई। और सो गई। अगले दिन उसकी नींद खुली। उसने फटाफट अपने पन्ने देखे। "हाय, मुझे लगा मैं सच में एक खाली किताब हूँ।"

– अम्बर, आनन्द निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल

नहीं दिखाई देती, फिर भी...

सन-सन करती चली हवा
फर-फर करती चली हवा
नहीं दिखाई देती फिर भी
देखो, कैसी चली हवा
हवा झूम जब आती है
फूलों को महकाती है
तब कुछ भौंरें आते हैं
फूलों पर मँडराते हैं
फूल बहुत शरमाते हैं
बादल भी घिर आते हैं
टिप-टिप बूँदें गिरती हैं
कड़-कड़ बिजली करती है
बिजली जब गुस्साती है
सबको खूब डराती है
हवा चली तो बरसा पानी
खेतों में छाई हरियाली
कितनी प्यारी चली हवा
हर मन को भाती चली हवा
नहीं दिखाई देती फिर भी
देखो कैसी चली हवा

– नूरेनिशां, मुँडेली, खटीमा, उत्तराखण्ड

- मनीषा गुर्जर, पाँचवीं, सवाइमाधोपुर

खूब रोया

एक चिड़िया और एक पेड़ दोनों दोस्त थे। चिड़िया उस पेड़ से आम खाती और उसी पेड़ पर रहती थी। एक दिन बहुत सारी चिड़िया वहाँ आ गईं और सारे आमों को खा गईं। उस चिड़िया को बहुत तेज़ भूख लगने लगी। पेड़ ने कहा, "जब तक फल नहीं आते तुम दूसरे पेड़ों से खा लिया करो।"

चिड़िया उड़ती हुई दूसरी जगह पर गई। उसे एक तालाब के किनारे एक बेर का पेड़ मिला। चिड़िया वहाँ पर बेर खाने लगी। उस तालाब में एक मगरमच्छ रहता था। एक दिन चिड़िया पेड़ से पककर झड़े बेरों को खा रही थी। तो मगरमच्छ ने उसे देख लिया और चिड़िया को पकड़कर खा गया। यह बात जब पेड़ को पता चली तो वह खूब रोया।

— मनीषा, 6 वर्ष, जगनपुरा, सवाई माधोपुर, राजस्थान

चिड़िया

एक बार एक लड़का जंगल में लकड़ियाँ लेने गया। वहाँ पर अचानक बारिश होने लगी। तभी उसने देखा कि एक चिड़िया ठण्ड से परेशान थी। वह लड़का उस चिड़िया को पकड़कर अपने घर ले आया। उसने चिड़िया को एक सूखे कपड़े से पोंछा और उसे पिंजड़े में रखा। उसे दाने दिए और पानी दिया। एक दिन वह जंगल से लकड़ियाँ लेने चला गया। पिंजड़ा खुला था और चिड़िया उड़ गई। वह लौटकर घर आया तो उसने देखा कि पिंजड़े में चिड़िया नहीं थी। वह बहुत उदास हुआ और चुपचाप लेट गया।

– शानू शुक्ला, आठवीं, स्वामी विवेकानन्द विद्यालय, लोधर ग्राम, कानपुर, उ. प्र.

- तरुष शाश्वती, सात साल, रायपुर

माथापच्ची

• रोज़ी, लिली और चमेली तीनों ने नए साल पर अपने शिक्षकों को देने के लिए फूल खरीदे। उनमें से एक ने गुलाब, एक ने लिली और एक ने चमेली के फूल लिए। गुलाब खरीदनेवाली लड़की बोली, “कितनी मज़ेदार बात है ना! हम में से किसी ने भी अपने नाम का फूल नहीं खरीदा।” लिली बोली, “हाँ तुम बिलकुल ठीक कह रही हो।”

क्या तुम बता सकते हो कि किस लड़की ने कौन-से फूल खरीदे?

लम्बी पूँछ
पीठ पर रेखा
दो-दो हाथों
खाते देखा (गिलहरी)

नीलू एक गली में .... बच्चे खेल रहे थे।
उस गली में से एक ..... औरत गुज़र रही थी।
उस .... औरत के हाथ में .... खी।
उन .... बच्चों ने उस .... औरत की .... गिरा दी।
इन सभी खाली जगहों में एक ही शब्द आएगा।

क्या हो सकता है वो शब्द?

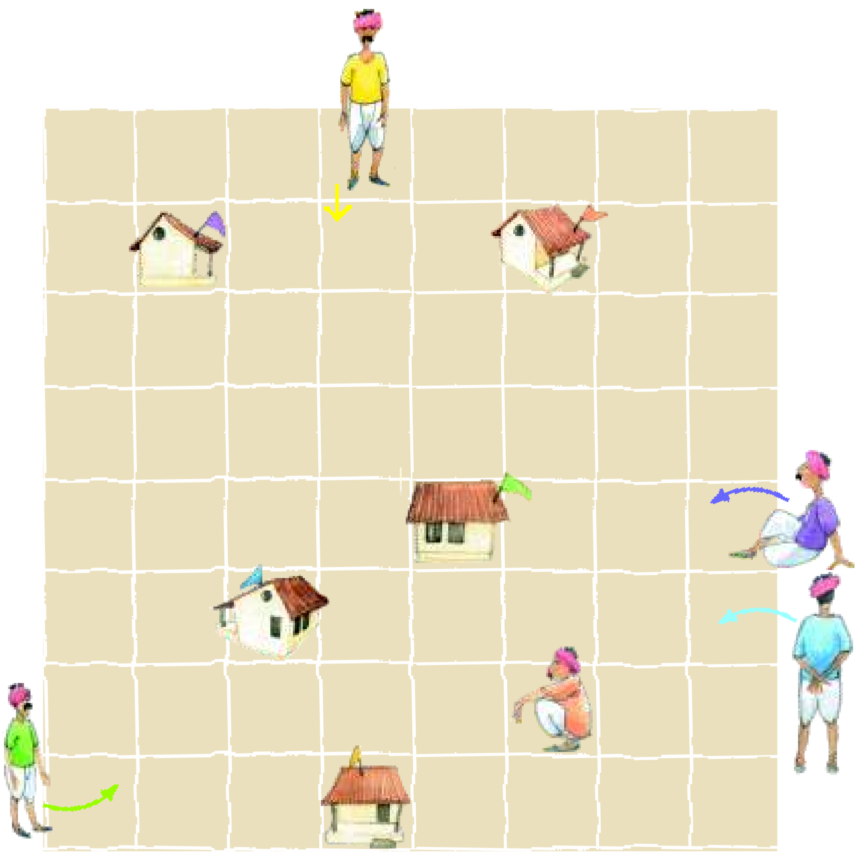

क्या तुम इन पाँचों लोगों को अपने घर पहुँचने का रास्ता बता सकते हो? ध्यान रहे कि किसी के भी घर का रास्ता किसी दूसरे के रास्ते को काटता ना हो। और हाँ एक और बात रास्ता केवल आड़ा या खड़ा हो सकता है तिरछा नहीं।

तुम्हारे पास एक बैग में 20 नीली और 14 लाल गेंदें हैं। एक बार में तुम बिना देखे 2 गेंदें निकालते हो। यदि दोनों गेंदें एक ही रंग की हुईं तो तुम बैग में एक नीली गेंद रख देते हो। यदि गेंदें अलग-अलग रंग की हुईं तो तुम बैग में लाल रंग की गेंद रख देते हो। (ध्यान रहे कि तुम हर बार दो गेंदें निकाल रहे हो और केवल एक गेंद रख रहे तो धीरे-धीरे बैग में गेंदों की संख्या कम होती जाएगी।)

तुम्हें बताना है कि बैग में बची आखिरी गेंद कौन-से रंग की होगी?

इतना बड़ा मेरा पेट
लेता सारा जग समेट
रोज़ सबेरे आता हूँ
सबके मन को भाता हूँ
(अखबार)

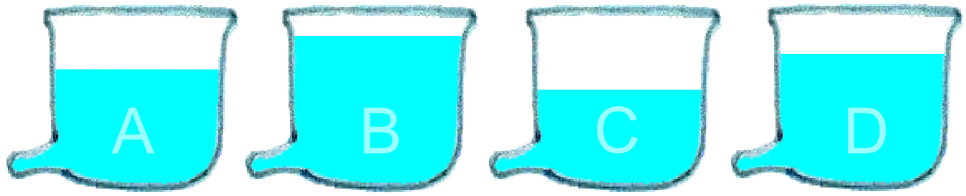

इन चारों बरतनों में पानी भरा हुआ है। हर बरतन के निचले हिस्से में एक छेद है। किस बरतन में से पानी तेज़ी से बहेगा?

अँधेरे से उजाले में आने पर एकदम से कुछ दिखाई क्यों नहीं देता?

एक कमरे में एक व्यक्ति की पंखे से झूलती हुई लाश मिली। उस कमरे में जाने के लिए केवल एक दरवाज़ा था। कोई खिड़की, रोशनदान वगैरह कुछ नहीं। उस कमरे में कोई सामान भी नहीं था। केवल फर्श पर पानी फैला हुआ था। **सोचकर बताओ कि वह व्यक्ति कैसे मरा होगा?**

प्रीत चाहती है कि माली उसके बगीचे में आम के चार पेड़ इस तरह लगाए कि सभी पेड़ों के बीच की दूरी बराबर हो।

क्या तुम माली की कुछ मदद कर सकते हो?

यदि हम दाएँ हाथ के दस्ताने को उलटा करके (यानी कि अन्दर का हिस्सा बाहर की ओर) करके बाएँ हाथ में पहनें तो दाएँ हाथ में पहनने पर दस्ताने का जो हिस्सा हथेली को छूता था

अब वह बाएँ हाथ की हथेली को छुएगा या हथेली के ऊपरी हिस्से को?

एक घर में हैं कमरे हज़ार
हर कमरे में पहरेदार
ऐसा अनोखा घर है बनाया
ना मिट्टी ना चूना लगाया
(मधुमक्खी का छत्ता)

लकड़ी के घोड़े पर
लोहे की लगाम ([illegible])

एक समान वज़नी दो वस्तुओं में से एक को 1 मीटर की ऊँचाई से और दूसरी को 2 मीटर की ऊँचाई से ज़मीन पर छोड़ा जाता है।

दोनों में से कौन-सी वस्तु ज़मीन पर बड़ा गड्ढा बनाएगी?

चित्र : दिलीप चिंचालकर

टुलटुल बिस्वास

टिटू-टिटू उर्फ डबल सपना

उदयपुर में ठण्ड भोपाल की तुलना में कुछ ज़्यादा ही थी। ट्रेन में सवार होने के बाद से ही कुछ ठण्ड और कुछ थकान के कारण मैं उनींदी-सी हो रही थी। जिस कूपे में मेरी सीट थी वह भी मेरे अलावा पूरा खाली था। पूरा डिब्बा ही काफी खाली-खाली था। सो नौ बजते ही मैंने अपना खाना निपटाया। फिर मुश्किल से 15-20 मिनट चकमक में दिलीप चिंचालकर का लेख पढ़ा – सुबह-सुबह की नींद और जाग के बीच के बारे में। सुबह छह बजे मुझे उज्जैन में उतरना था। इसलिए मैंने घड़ी में अलार्म लगाया और बीचवाली बर्थ खोलकर सो रही।

सुबह कोई साढ़े चार बजे एक बार नींद खुली। बाथरूम का चक्कर लगा आकर मैं फिर सो गई। तभी मैंने देखा कि हमारे घर मिलने आए कुछ लोग वापस जा रहे हैं। उनकी बड़ी-सी गाड़ी ऐसे खड़ी थी कि उन्हें कुछ दूर तक उसे रिवर्स में ले जाना पड़ रहा था। जैसे-जैसे गाड़ी रिवर्स में चलती रही, आवाज़ आती रही – टिटू-टिटू, टिटू-टिटू, टिटू-टिटू....। फिर अचानक कुछ ऐसा अजब हुआ कि गाड़ीवाला मोड़ तक पहुँचकर भी रिवर्स में ही गाड़ी चलाता गया। हमारे घर के आगे बने पार्क के एक-तरफ, फिर दूसरी तरफ, फिर कुछ और आगे जाकर दुकानों के पीछे की लम्बी सड़क पर भी वह रिवर्स में ही गाड़ी चलाता गया। और आवाज़ आती रही – टिटू-टिटू, टिटू-टिटू, टिटू-टिटू....।

तब मेरा माथा ठनका – अरे, यह तो मेरी अलार्म घड़ी की आवाज़ है। और अभी तक जो हो रहा था, वह सपना था। मैंने फटाफट बैग में से घड़ी निकाली और स्विच दबाकर उसे बन्द किया। पर वह बजती ही रही – टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू....। तब मैंने घुण्डी घुमाकर समय बतानेवाले उसके काँटे की जगह बदली। पर फिर भी वह बोलती रही – टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू....। आखिर तंग आकर मैंने उसके पीछे का ढक्कन खोलकर सेल भी निकाल दिए। वह कम्बख्त फिर भी बोलती रही – टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू....।

तब असल बात समझ में आई कि यह सब मैं दरअसल नींद के अन्दर ही कर रही थी – सपने में। और घड़ी बाकायदा मेरे बैग के आगे की जेब में बैठी अलार्म बजा रही थी – टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू, टिट्टू-टिट्टू....।

चित्रः अभिषेक वर्मा

चींटी की छाया में फरवरी

(पेज 56 का शेष भाग)

लिए लोग घर बनाते। कई लोगों के पास घर ही न होता। तो वे लौटते तो भी लगता कि वे कहीं जा रहे हैं। दिन में तारे दिखते रहते। मैं तारे को रोशनी से कम दूरी से ज़्यादा पहचानता। तारे एक रोशनी की बूँद की तरह दिखते। हालाँकि वे एक समूची दुनिया होते। ज़मीन पर भी एक आसमान होता। ज़्यादातर लोग बिलकुल पास रहकर भी तारे की तरह बने रहते। उनका एक भरा-पूरा संसार होता। पर वे एक बूँद भर दिखते। अपरिचित। दूर। रात में लोग करोड़ों मील दूर के तारे को पहचान लेते। ध्रुव तारे से लोग दिशा जानते फिरते। पर दिन के उजाले में अनेकों लोग तारे बने रहते। मैं शहर में घूमता और इन अनेकानेक तारों से दिशा समझने की कोशिश करता।

एक चींटी दिख जाती। कभी-कभी लगता कि चींटी सचमुच इतनी छोटी है या कि हमारी नज़रन्दाज़ी की वजह से वह इतनी छोटी नज़र आती है। दूर। जैसे कि तारे नज़र आते हैं। मैं उसके एकदम पास चला जाता। मैं चींटी की आँख के तारे को देखना चाहता। पर चींटी की आँख के तारे को देखने निकली मेरी नज़र समूची चींटी से कम न देख पाती।

फरवरी का शहर सर्दी से बच गया शहर होता। मैं बचे रास्तों पर चलकर शहर घूमता। और बची जगह में किनारे खड़े बचे पेड़ों को देखता रहता। मुझे लगता कि पेड़ बचे रास्ते में नहीं बीच रास्ते मिलें। बच गई झील पर लोग बचे समय को गुज़ारने आते रहते। बचा समय दिन के किनारे का बच गया समय होता था। दिन के बीच में झील देखने को न मिलती थी। इस झील के किनारे एक बच गई मस्ज़िद होती। बहुत छोटी। वह झील के इतने किनारे थी कि किनारे लगी नाव की तरह लगती थी। मैं उसे बाहर से एक बचे मुसलमान की तरह देखता। ज़्यादातर मज़हबी इमारतें बाहर से ही बची लगतीं। मैं उनमें अन्दर जाने से बचता।

चित्रकल्पना : शशि किरण

...और सम्बलपुर की अगली ट्रिप पर जाने का इन्तज़ाम हो गया।

लगा आज तो डॉबरमैन ले ही आऊँगा।

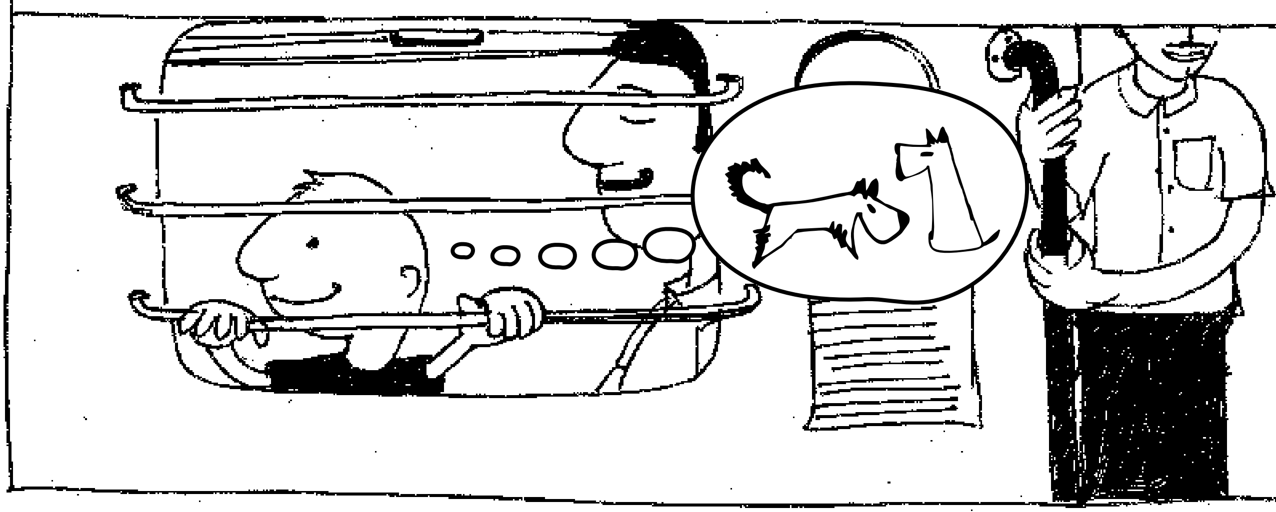

झारसुगुड़ा में ट्रेन में नया इंजन लगता है। सो हम उतरकर, डॉबरमैन बेचनेवाले के पास चल पड़े। पर किस्मत ही खराब थी।

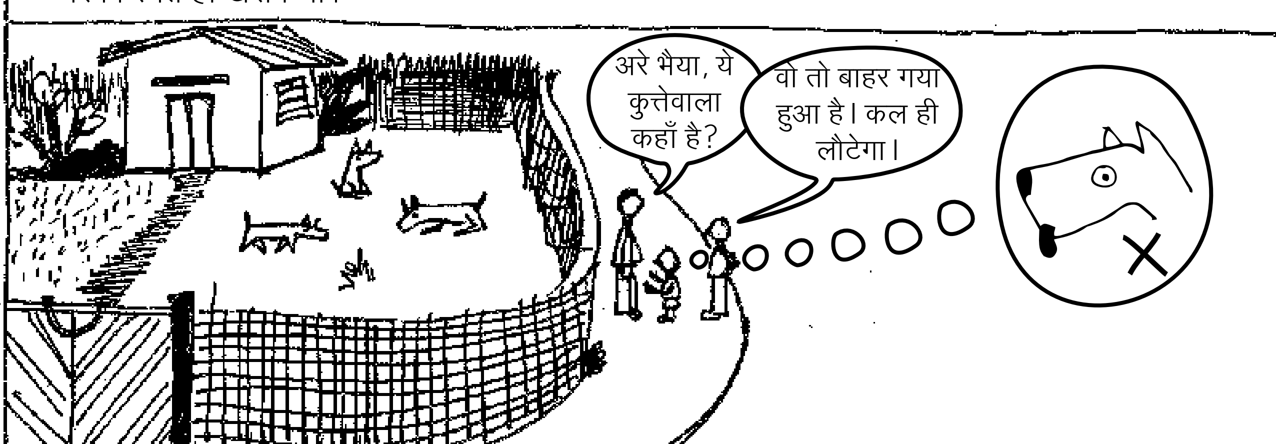

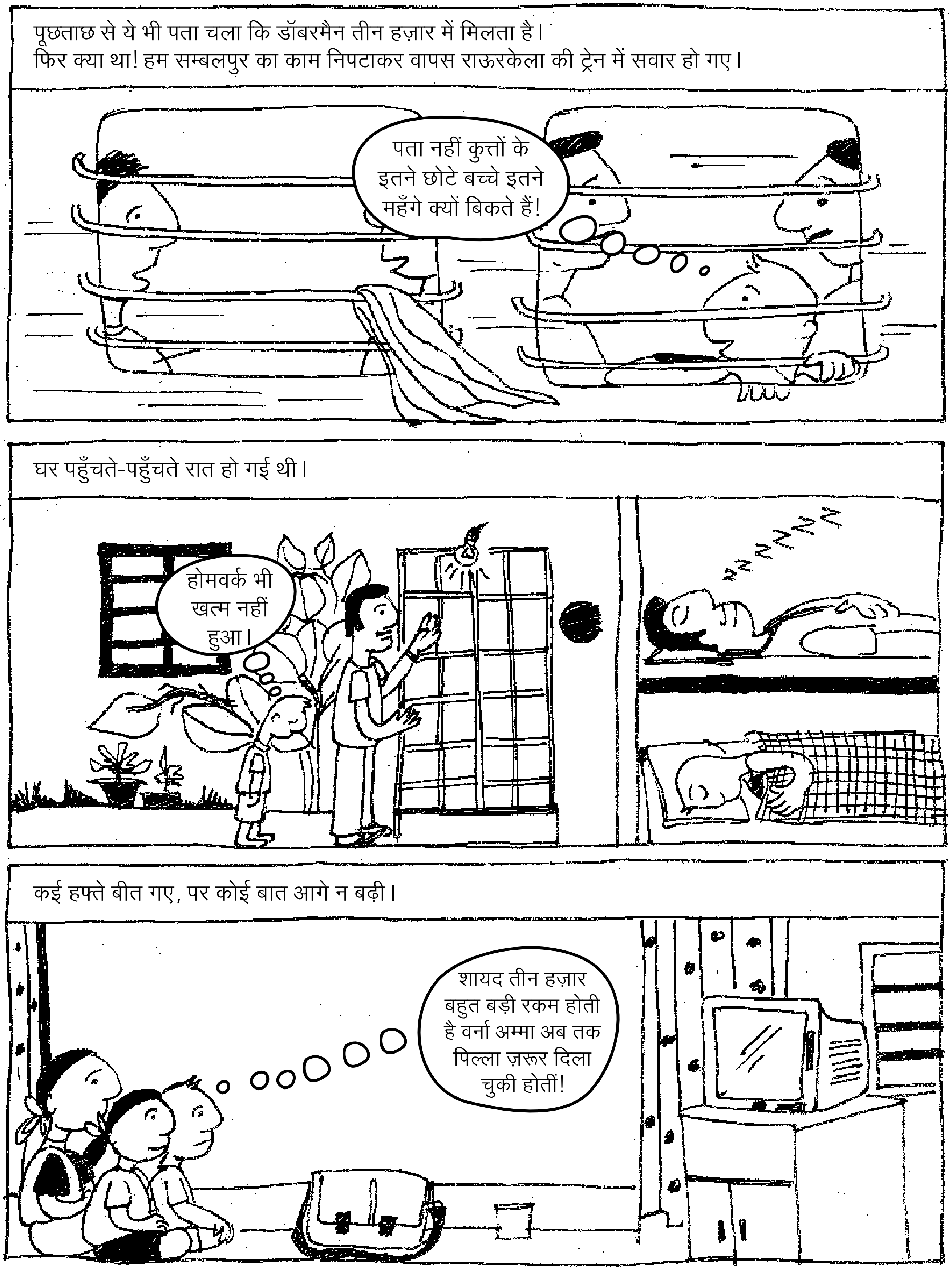
पूछताछ से ये भी पता चला कि डॉबरमैन तीन हज़ार में मिलता है।
फिर क्या था! हम सम्बलपुर का काम निपटाकर वापस राऊरकेला की ट्रेन में सवार हो गए।
पता नहीं कुत्तों के इतने छोटे बच्चे इतने महँगे क्यों बिकते हैं!
घर पहुँचते-पहुँचते रात हो गई थी।
होमवर्क भी खत्म नहीं हुआ।
कई हफ्ते बीत गए, पर कोई बात आगे न बढ़ी।
शायद तीन हज़ार बहुत बड़ी रकम होती है वर्ना अम्मा अब तक पिल्ला ज़रूर दिला चुकी होतीं!

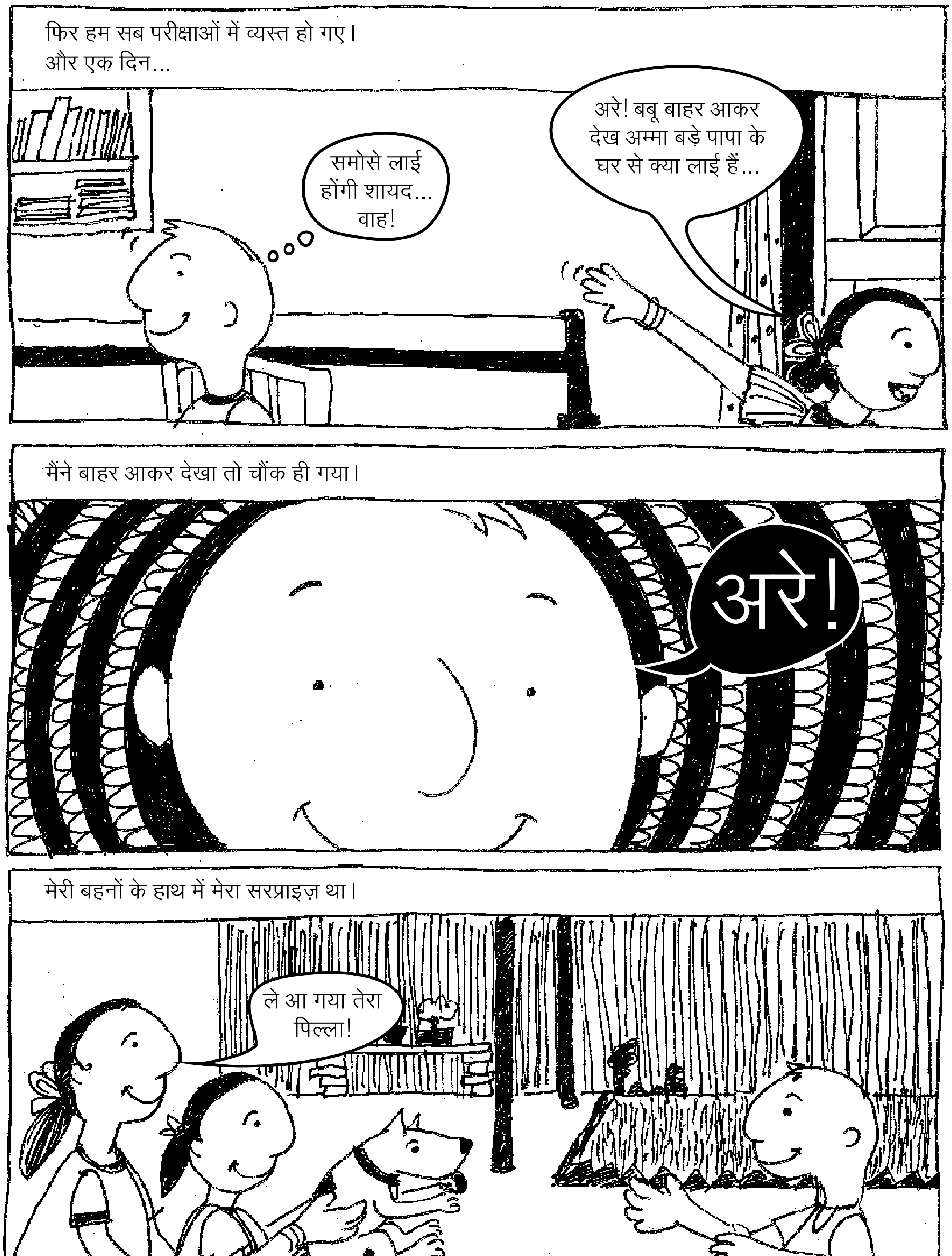
फिर हम सब परीक्षाओं में व्यस्त हो गए।
और एक दिन...
अरे! बबू बाहर आकर देख अम्मा बड़े पापा के घर से क्या लाई हैं...
समोसे लाई होंगी शायद... वाह!
मैंने बाहर आकर देखा तो चौंक ही गया।
अरे!
मेरी बहनों के हाथ में मेरा सरप्राइज़ था।
ले आ गया तेरा पिल्ला!

फिर शुरू हुआ सवालों का सिलसिला।
इसे कहाँ से लाए? कितने महीने का है? क्या ब्रीड (नस्ल) है? ये तो फीमेल (मादा) है। अच्छा है...
तुम्हारे बड़े पापा के दोस्त ने पाला था इसे। पर यह बहुत शैतान है और बहुत ज़्यादा खाती है। सो वो इसे किसी को देना चाहते थे। तो हम तुम्हारे लिए ले आए। तुम्हें पसन्द है ना!
मेरे सवाल और उत्सुकता बढ़ती ही चली गई।
ये किस नस्ल की है पता नहीं चल रहा।
जब डॉक्टर को दिखाएँगे तो उन्हीं से पूछ लेना...

जारी...

हमने पकाई है एक डायरी... तुम्हारे लिए!

आकर्षक चित्रों से सजे-धजे डेढ़ सौ पन्ने

इसका नाम है -

दुबली चींटी सबसे आगे थी...

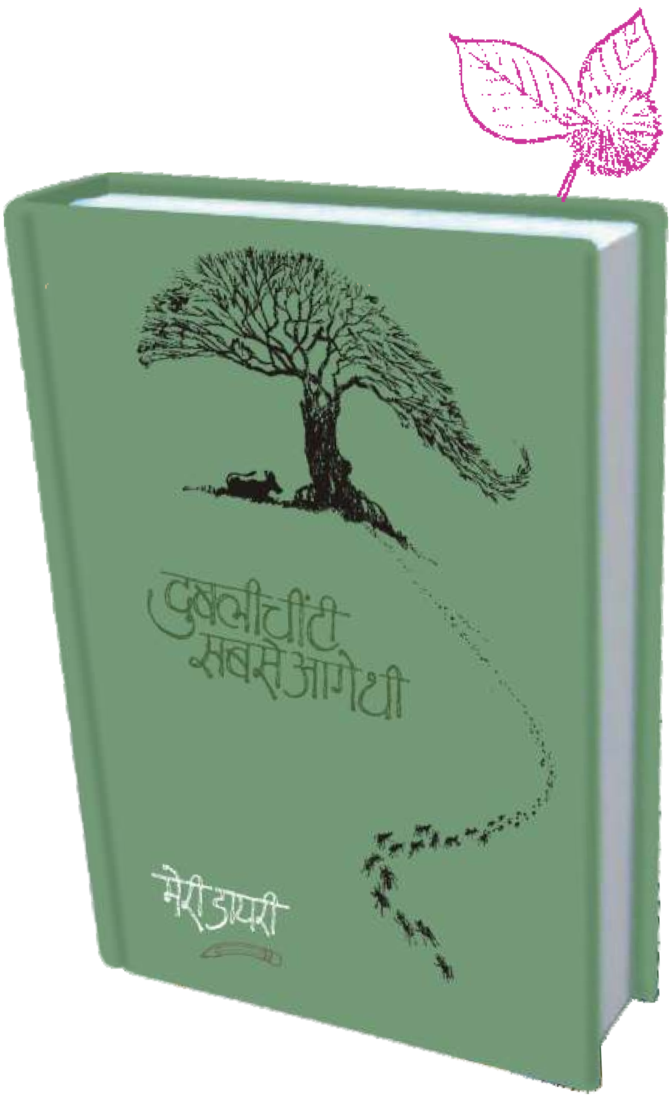

जैसा इसका नाम है -

यह डायरी बहुत ही दोस्ताना स्वभाव की है। तुम्हारे पास आते ही तुमसे बातें करेगी...रोज़-रोज़ तुम्हारे ही पड़ोस की नई-नई चीज़ों से, लोगों से मिलवाएगी। तुम्हारे साथ चाँद-तारे निहारेगी। तुम्हें चित्र बनाने के लिए नए-नए विषय सुझाएगी। कई बातें होंगी जो तुम अब तक किसी को नहीं बताते होगे...तुम इस डायरी से साझा कर सकते हो।

सपने बुनते हैं
तो तारे सुनते हैं

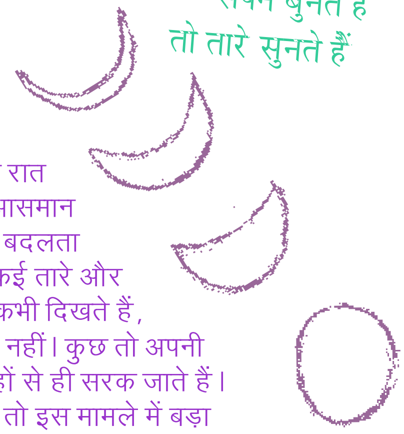

आज रात
का आसमान
रोज़ बदलता
है। कई तारे और
ग्रह कभी दिखते हैं,
कभी नहीं। कुछ तो अपनी
जगहों से ही सरक जाते हैं।
चाँद तो इस मामले में बड़ा
उस्ताद है।
कभी गोल-गोल, कभी फाँक-फाँक।

मार्च

मार्च में नीम के नीचे बैठ जाते और किताब खोल लेते। नीम की कोई पीली पत्ती लहराती हुई किताब पर आ गिरती। नीम की पत्ती को हम देखते रहते। उसके पीले रंग को देखते रहते। कई सवाल मन में आकर बैठ जाते। कभी लगता कि पीले रंग के नीचे ज़रूर पत्ती अभी भी हरी होगी। कभी लगता शायद हरा रंग ही पीले में बदल गया है। पत्ती पीली हो गई इसलिए गिरी या उसे गिर जाना है इसलिए पीली हो गई!

इस डायरी को मँगाने के लिए सम्पर्क करें -

कीमतः 150 रुपए
डाक खर्च अतिरिक्त
10 से अधिक प्रतियों का डाक खर्च हम देंगे

भुगतान एकलव्य के नाम से बने चैक/मनिऑर्डर/ड्राफ्ट द्वारा भेजें।
भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।

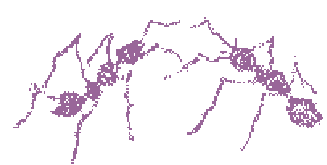

एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462016 (म.प्र.)
फोन - 09425010115, 0755 - 2671017, 4252927
email - chakmak@eklavya.in, pitara@eklavya.in www.chakmak.eklavya.in www.eklavya.in
ऑनलाइन मँगाने के लिए यहाँ क्लिक करें -
http://www.pitarakart.in/dublee-cheenti-sabse-aage%20-thi?search=dublee

ठिठुरा देनेवाली सर्दी के बीच एक-दो दिन ज़रा गर्म क्या हुए कानों में मच्छर गीत गाने लगते हैं। हैरत होती है इन्हें देखकर! जहाँ जाओ वहीं मिल जाते हैं। पर हम जानते कितना कम हैं इन्हें। इस बार इनसे दोस्ती हो जाए तो चकमक के आगे के अंकों में भरत पुरे के साथ इनकी दिलचस्प दुनिया में विचरेंगे...

कीटों की दुनिया

भरत पुरे

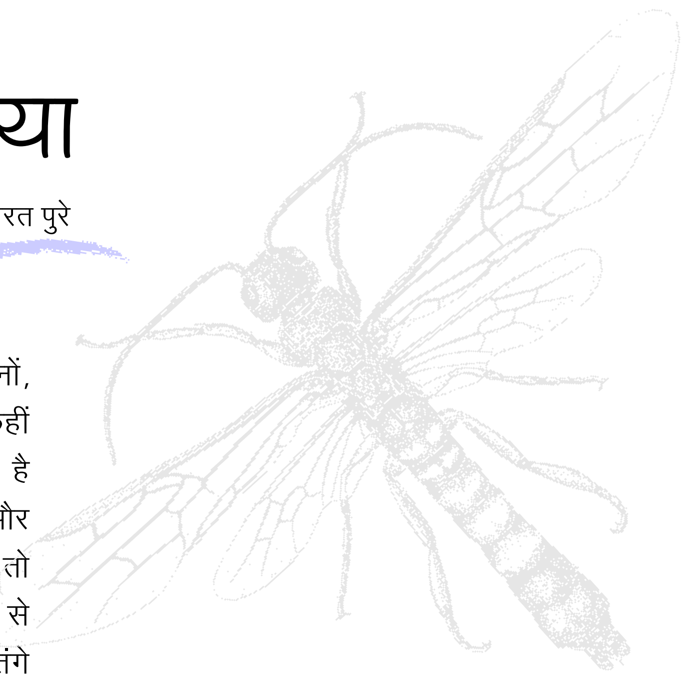

घर में, घर के बाहर, बगीचों, जंगलों, नदी-नालों-झरनों, पहाड़ों की ऊँची-ऊँची चोटियों पर या गुफाओं में यानी कहीं भी चले जाओ जो एक चीज़ आपको बदस्तूर मिलेगी वो है कीड़े-मकोड़े। वो भी इतने अलग-अलग आकार-प्रकार और रंगों के कि हैरान ही कर जाएँ। कोई बेहद सुन्दर रंगोंवाले तो कोई बहुत ही भद्दे और बदबूदार। यहाँ ऑलपिन के माथे से भी छोटे से लेकर एक फुट के फैलाववाले पंखधारी पतंगे (मॉथ) तक मिल जाएँगे। आश्चर्य की बात है कि लगभग 30 करोड़ साल पहले इन कीटों के पूर्वजों की कुछ प्रजातियों के पंखों का फैलाव 30 इंच तक होता था।

जन्तु-जगत में कीटों की प्रजातियाँ अन्य जन्तु समूहों से कई गुना ज़्यादा हैं। मोटे तौर लगभग 75 प्रतिशत जन्तु प्रजातियाँ ऑर्थ्रोपोड हैं। ऑर्थ्रोपोड जन्तुओं में सहस्त्र पाद (मिलीपीड), शतपाद (सेंटीपीड), केकड़े झिंगे, कीट समूह, बिच्छू और मकड़ियाँ शामिल हैं। और अचरज यह कि ऑर्थ्रोपोड में से कोई 97 प्रतिशत प्रजातियाँ कीट समूह की हैं।

अलग-अलग तरह के रहवासों के मुताबिक खुद को ढाल पाने की वजह से ही इतनी भारी तादाद में कीटों की प्रजातियाँ जैव-विकास की दौड़ में अपना अस्तित्व इसीलिए बनाए हुए हैं। इस काम में इन्हें इनकी बेहद काबिल ज्ञानेन्द्रियाँ बहुत मदद करती हैं। अपने मुँह के कई अंगों से ये कई सारे तरह से आहार ले सकते हैं जैसे काटने, चबाने, चूसने, चाटने, भेदने आदि के ज़रिए। इनकी ज्ञानेन्द्रियों और मुँह के बारे में दिलचस्प बातें तुम चकमक के अगले अंकों में जानोगे।

कीटों की पहचान

कीट समूह के बाशिन्दों के शरीर तीन हिस्सों में बँटे होते हैं – सिर, वक्ष (छाती) और उदर (पेट)। इसके वक्ष में तीन जोड़ी यानी छह टाँगें होती हैं। जिस भी जीव में ये दो लक्षण हैं वो कीट ही कहलाएगा। इनके अलावा अधिकाँश कीटों में एक या दो जोड़ी पंख भी होते हैं। (जन्तु जगत में पक्षियों के अलावा केवल कीटों में ही वास्तविक पंख होते हैं)।

हर कीट के सिर पर दो ऐन्टिना; दो संयुक्त आँखें (हरेक आँख में कई इकाइयों वाली आँख) और मुखांग होते हैं। वक्ष तीन हिस्सों में बँटा होता है – प्रत्येक हिस्से से एक-एक जोड़ी टाँगें निकली होती हैं तथा दूसरे और तीसरे खण्ड में एक-एक जोड़ी पंख होते हैं। इनके शरीर का तीसरा भाग, उदर दस हिस्सों में बँटा होता है। आखरी हिस्से जननांगों में विकसित होते हैं।

अन्य अर्थ्रोपोड जन्तुओं की तरह कीटों का पूरा शरीर एक मज़बूत जलरोधी आवरण में लिपटा होता है।

कीट समूह के सदस्यों का जीवन चक्र दो तरह का हो सकता है –

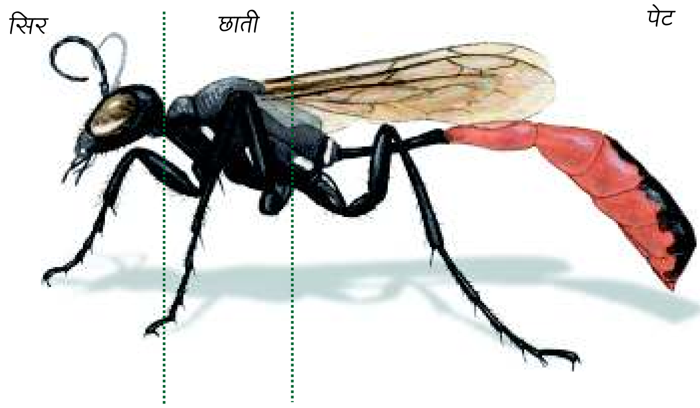

1. पूर्ण कायान्तरण वाले कीट जैसे मक्खी, मच्छर, तितली आदि में मादा के अण्डों से इल्ली निकलती है, इल्ली फिर शंखी (प्यूपा) बनती है और प्यूपा से कीट का जन्म होता है। यानी कीटों का जीवन चक्र चार अवस्था से गुज़रता है –

वयस्क मादा – अण्डा – इल्ली – प्यूपा – अवयस्क बच्चे – वयस्क नर एवं मादा

2. अपूर्ण कायान्तरण वाले कीट जैसे कॉकरोच, टिड्डे, खटमल आदि में अण्डों से जो बिना पंखवाले बच्चे निकलते हैं वे हूबहू वयस्कों जैसे होते हैं। यानी इनमें इल्ली या प्यूपा अवस्थाएँ नहीं होती हैं।

कीट समुदाय में किस्म-किस्म के कीड़े हैं। कोई फसलों, अनाज, कपड़ों, लकड़ी आदि को बहुत नुकसान पहुँचाते हैं, बीमारियाँ फैलाते हैं तो मधुमक्खी, रेशम व लाख जैसे कुछ कीड़े हमारे लिए काफी उपयोगी भी हैं। दीमक, मधुमक्खी, चींटी, ततैया जैसे कीट एक पूरी तरह से विकसित और अनुशासित सामाजिक जीवन व्यवस्था अपनाते हैं।

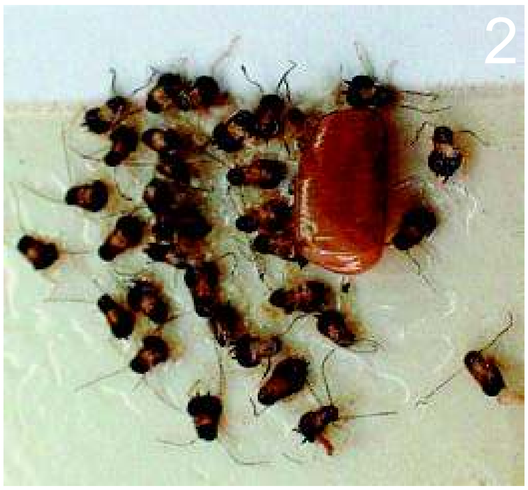

हलकी नीली दुनिया

लेखक : कार्ल सेगन

अनुवादः अरविन्द गुप्ता

चित्रः दिलीप चिंचालकर

इस नुक्ते को ज़रा गौर से देखो! यह हमारा घर है। यहाँ हम रहते हैं। हर वो शख्स जिससे हमें मोहब्बत हो, हर वो इंसान जिसे हम जानते हों, हर वो व्यक्ति जिसके बारे में हमने कभी सुना हो, हर इंसान जो कभी पैदा हुआ हो, हर इंसान जो कभी ज़िन्दा रहा हो, वो यहीं रहा होगा। हमारी सारी खुशियाँ और गम, हज़ारों धर्म और मज़हब, विचारधाराएँ और हिसाब-किताब, हर शिकारी और चारागर, हर हीरो और बुज़दिल, इंसानी सभ्यता का हर सहेजने वाला और उसे तबाह करनेवाला, हर बादशाह और किसान, प्रेमियों का हर जोड़ा, हर माँ-बाप, हर उम्मीदवान बच्चा, हर खोजी, हर उपदेशक, हर बेईमान सियासतदां, हर सुपरस्टार, हर महान नेता, हमारी नस्ल के इतिहास का हर महात्मा और पापी यहीं पर रहा होगा – सूरज की किरण से लटके अदने से इस धूल के कण पर।

असीम ब्रह्माण्ड में हमारी दुनिया एक बहुत छोटा-सा मंच है। ज़रा सोचें फौज के उन जनरलों और सम्राटों के बारे में, जिन्होंने चन्द लम्हों की जीत और शोहरत के लिए खून के दरिए बहाए। मुश्किल से नज़र आनेवाले इस महीन धब्बे पर, इधर के बाशिन्दों ने उधर के लोगों पर तमाम जुल्म ढाए। उनकी गलतफहमियों और वहशी नफरतों को क्या कहें! और वे कत्ल करने के लिए किस कदर आमादा रहते हैं – हरदम।

हमारे दिखावे, ख्याली शहंशाहियत और यह गलतफहमी कि इस ब्रह्माण्ड में हम ही कुछ खास हैं, को यह हलकी-सी किरण एक चुनौती पेश करती है। ब्रह्माण्ड के इस अथाह स्याह में हमारा ग्रह रोशनी का एक धुँधला धब्बा भर है। इस असीम अँधकार में हम कोई उम्मीद न रखें कि कोई कहीं से खुद ब खुद हमें बचाने आएगा।

पूरे ब्रह्माण्ड में शायद पृथ्वी ही वो ग्रह है जहाँ जीवन है। आनेवाले समय में अभी तो ऐसा कोई दूसरा ग्रह नहीं जहाँ हम बस सकते हैं। अलबत्ता दूसरे ग्रहों पर घूमने-फिरने ज़रूर जाया जा सकता है। हम चाहें या न चाहें, पर आज इस धरती के अलावा हमारे सामने रहने के लिए कोई दूसरी जगह नहीं।

(पुस्तक *पेल ब्ल्यू डॉट* का एक अंश)

14 फरवरी 1990 को वॉयजर-1 ने अपनी अन्तरिक्ष यात्रा पूरी की। जब वह लौटने को हुआ तो इंजीनियरों ने पलटकर हमारी पृथ्वी पर एक आखरी निगाह डाली और एक तस्वीर खींच ली। उस तस्वीर में पृथ्वी सूरज की किरणों के बीच एक हलके नीले महीन धब्बे-सी नज़र आई। उस वक्त वॉयजर हमसे 6 अरब किलोमीटर दूर था।

कार्ल सेगन ने बाद में एक किताब लिखी हलकी नीली दुनिया...

कहा जाता है कि खगोल-विज्ञान इंसान को नम्र, विनयशील बनाता है। छोटी-सी दुनिया के इस अक्स में हमें अपनी बेवकूफी और बदगुमानी की सबसे बड़ी मिसाल मिलेगी। जब मैं अपनी इस छोटी-सी दुनिया को निहारता हूँ तो वो मुझे अपनी ज़िम्मेदारियों का एहसास दिलाती है। हम दूसरों से बेहतर तरीके से कैसे पेश आएँ? हम अपनी हलकी-नीली और नाज़ुक दुनिया की देखभाल कैसे करें? हम यह न भूलें कि वो आदिकाल से आज तक हमारा घर रही है।

परीक्षा न हो, तो क्या तुम ... *(पेज 45 का शेष भाग)*

चलो सबसे पहले यह देखते हैं कि मैंने और तुमने ऐसी कितनी चीज़ें सीखी हैं जिनके लिए कोई परीक्षा नहीं होनेवाली थी। मैं एक उदाहरण देता हूँ। ताश के कई खेल मैं खेल सकता हूँ। स्कूलों में ताश के खेलों की परीक्षा तो दूर, उनके बारे में बात करना भी बुरी बात मानी जाती थी। परन्तु मैं ताश के कम से कम बीस खेल जानता हूँ और ठीक-ठाक ढंग से खेल लेता हूँ। अब कोई ज़रूर कहेगा कि बुरी बातें तो सब सीख जाते हैं। लेकिन मैंने कई सारी बातें सीखीं जिनका परीक्षा से कोई लेना-देना नहीं था। हाँ, ऐसा नहीं है कि ये सब कुछ मैंने अपने-आप सीख लिया। कभी दोस्तों की मदद, कभी किसी किताब-पत्रिका-अखबार की मदद मिली, कभी किसी बड़े व्यक्ति ने हाथ थामा। कभी-कभी खुद भी सीखा बगैर किसी मदद के।

क्या तुम बता सकते हो कि तुमने क्या-क्या सीखा है जिसमें पास-फेल का कोई सवाल नहीं था! मुझे लगता है कि यदि अपन सब मिलकर सोचें तो हज़ारों चीज़ें निकलेंगी। मैं चाहता हूँ कि तुम याद करके बताओ कि तुमने ऐसी कौन-कौन-सी चीज़ें सीखी हैं। यदि यह भी बता सको कि उन्हें सीखने की इच्छा क्यों पैदा हुई और किस तरह की मदद मिली तो और भी अच्छा रहेगा। पहले इन चीज़ों को देख लें फिर बात करेंगे कि इन चीज़ों और स्कूल में सिखाई जानेवाली चीज़ों में क्या समानता है और क्या अन्तर हैं।

तो तुम्हारे जवाबों का इन्तज़ार रहेगा। उसके बाद ही बात आगे बढ़ाएँगे।

एक बात और जोड़ देना चाहता हूँ। बड़े लोग भी इस बातचीत में शामिल होना चाहें तो उनका स्वागत है मगर बच्चों के भेष में नहीं।

सआदत हसन मण्टो

अनुवादः कैसर शमीम

जी, आया साहब!

बावर्चीखाने के धुँधले माहौल में एक अन्धा बल्ब कब्र पर जलने वाले चिराग की तरह अपनी सुर्खी फैला रहा था। धुएँ से भूरी हुई दीवारें दैत्यों की तरह दिखाई पड़ती थीं। बिजली के चूल्हे पर रखी हुई केतली का पानी पता नहीं किस चीज़ पर खामोश हँसी हँस रहा था। दूर कोने में नल के पास एक छोटी उम्र का लड़का बैठा बरतन साफ कर रहा था। यह इंस्पेक्टर साहब का नौकर था।

बरतन साफ करते हुए यह लड़का कुछ गुनगुना रहा था। उसकी जबान से बगैर किसी कोशिश के ये शब्द निकल रहे थे, “जी, आया, साहब! जी, आया साहब! बस, अभी साफ हुए जाते हैं, साहब!”

अभी बरतनों को राख से साफ करने के बाद उन्हें पानी से धोकर करीने से रखना भी था और यह काम जल्दी से न हो सकता था। लड़के की आँखें नींद से बन्द हुई जा रही थीं। सिर भारी हो रहा था। मगर अभी तो बहुत काम पड़ा था।

बिजली का चूल्हा बदस्तूर एक शोर के साथ नीले शोले उगल रहा था। केतली का पानी उसी अन्दाज़ में खिलखिलाकर हँस रहा था।

अचानक लड़के ने नींद के हमले को महसूस करते हुए अपने शरीर को एक झटका दिया और “जी, आया साहब। जी, आया साहब।” गुनगुनाता हुआ फिर काम में मशगूल हो गया।

“कासिम! कासिम!”

“जी, आया साहब!” लड़का भागता हुआ अपने मालिक के पास गया।

इंस्पेक्टर साहब ने कम्बल से मुँह निकाला और लड़के पर नाराज़ होते हुए कहा, “बेवकूफ के बच्चे! आज फिर यहाँ सुराही और गिलास रखना भूल गया।”

“अभी लाया साहब! अभी लाया साहब!”

कमरे में सुराही और गिलास रखने के बाद वह अभी बरतन साफ करने के लिए बैठा ही था कि फिर उस कमरे से आवाज़ आई, “कासिम! कासिम!”

“जी आया साहब!” कासिम भागता हुआ अपने मालिक के पास गया।

“बसई का पानी किस कदर खराब है! जाओ, पारसी के होटल से सोडा लेकर आओ। भागते हुए जाओ, सख्त प्यास लग रही है।”

“बहुत अच्छा साहब!”

कासिम भागता हुआ गया और घर से लगभग आधे मील दूर पारसी के होटल से सोडे की बोतल ले आया और अपने मालिक को गिलास में डालकर दे दिया।

“अब तुम जाओ, मगर इस समय तक क्या कर रहे हो। बरतन साफ नहीं हुए क्या?”

“अभी साफ हो जाते हैं साहब!”

“और हाँ, बरतन साफ करने के बाद मेरे जूते पॉलिश कर देना, मगर देखना, चमड़े पर कोई खराश न आए, वरना...”

कासिम को “वरना” के बाद का वाक्य बखूबी मालूम था। “बहुत अच्छा साहब।” कहते हुए वह रसोई में वापस चला गया और बरतन साफ करने लगा।

अब नींद उसकी आँखों में सिमटी चली आ रही थी, पलकें आपस में मिली जा रही थीं, सिर भारी हो रहा था। यह सोचते हुए कि साहब के बूट भी अभी पॉलिश करने हैं, कासिम ने अपने सिर को ज़ोर-से झटका दिया और वही राग अलापना शुरू कर दिया, “जी, आया साहब। जी, आया साहब! बूट अभी हो जाते हैं, साहब!”

मगर नींद का तूफान हज़ार बाँध बाँधने पर भी न रुका। तभी एक अजीब ख्याल उसके दिमाग में आया, "भाड़ में जाएँ बरतन और चूल्हे में जाएँ बूट! क्यों न थोड़ी देर इसी जगह पर सो जाऊँ। और फिर आराम करने के बाद...।"

कासिम ने इस विचार को गलत मानते हुए बरतनों पर जल्दी-जल्दी राख मलनी शुरू कर दी। थोड़ी देर बाद जब नींद फिर आने लगी तब मुँह पर पानी के छींटे मार-मारकर बड़ी मुश्किल से उसने सब बरतनों को आखिरकार साफ कर ही लिया। यह काम करने के बाद उसने इत्मीनान की साँस ली।

अब वह आराम से सो सकता था।

रसोई की रोशनी बन्द करने के बाद कासिम ने बाहर बरामदे में अपना बिस्तर बिछाया और लेट गया। इसके पहले कि नींद उसे अपनी आरामदेह बाँहों में थाम पाती उसके कान "बूट-बूट" की आवाज़ों से गूँज उठे।

"बहुत अच्छा, साहब, अभी पॉलिश करता हूँ।" बड़बड़ाता हुआ कासिम बिस्तर से उठा, जैसे उसके मालिक ने अभी-अभी बूट पॉलिश करने का हुक्म दिया हो। अभी कासिम बूट का एक पैर भी अच्छी तरह पॉलिश न कर पाया था कि नींद ने उसे अपने वश में करके उसे वहीं सुला दिया।

सुबह जब इंस्पेक्टर साहब ने अपने नौकर को बाहर बरामदे में बूटों के पास सोए हुए देखा तो उसे ठोकर मारकर जगाते हुए कहा, "यह सुअर की तरह यहाँ बेहोश पड़ा है और मेरा ख्याल था कि इसने बूट साफ कर दिए होंगे, नमकहराम! अबे, कासिम!"

"जी, आया साहब!" कासिम के मुँह से इतना ही निकला था कि उसने अपने हाथ में बूट साफ करने का ब्रश देखा। तुरन्त इस मामले को समझते हुए उसने काँपती हुई आवाज़ में कहा, "मैं सो गया था, साहब! मगर बूट अभी पॉलिश हुए जाते हैं, साहब!"

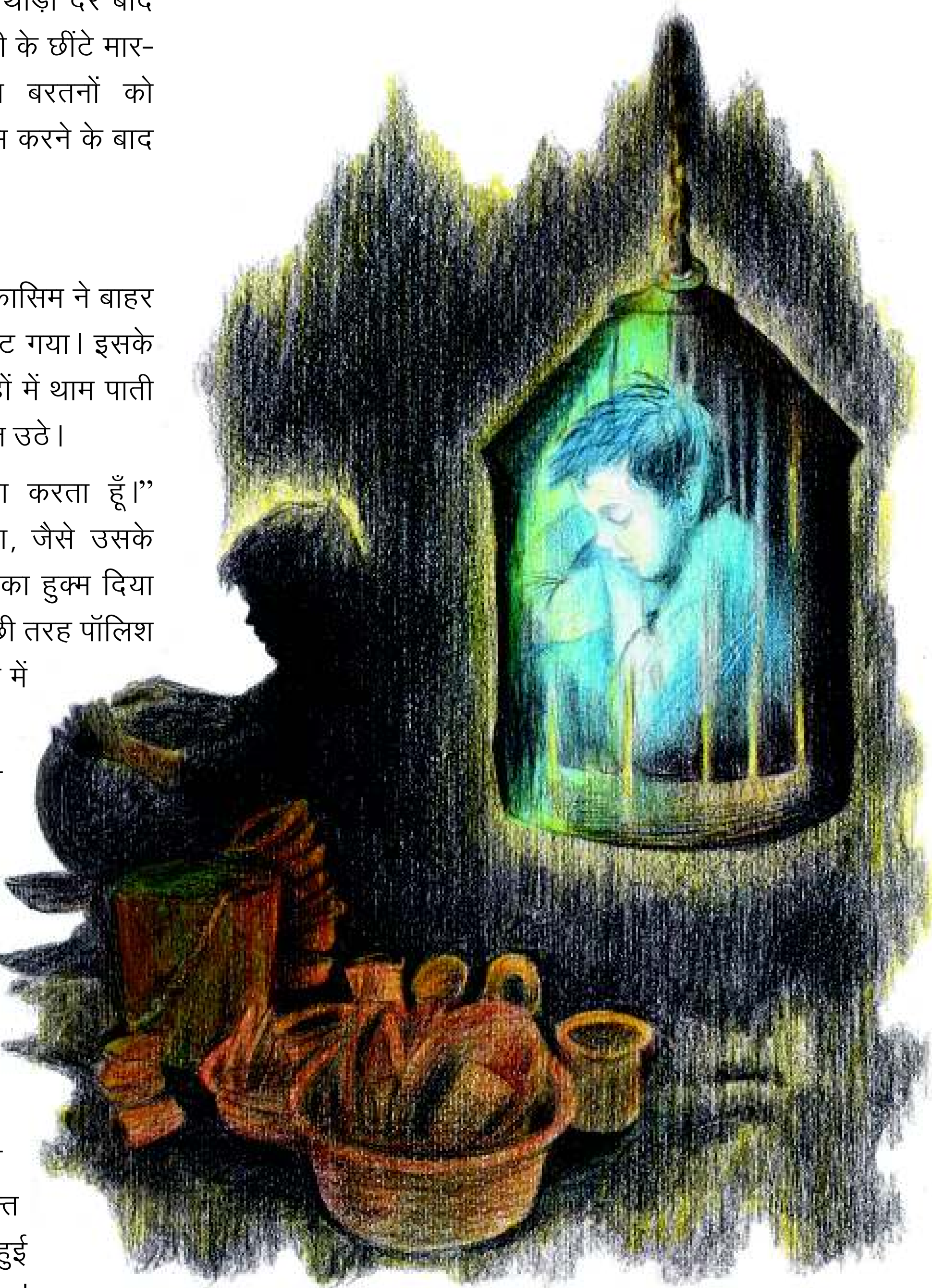

चित्रः प्रशान्त सोनी

यह कहते हुए उसने जल्दी-जल्दी बूट को ब्रुश से रगड़ना शुरू कर दिया।

बूट पॉलिश करने के बाद उसने अपना बिस्तर तह किया और उसे ऊपर के कमरे में रखने चला गया।

"कासिम!"

"जी, आया साहब!"

कासिम भागा हुआ नीचे आया और अपने आका के पास खड़ा हो गया।

"देखो, आज हमारे यहाँ मेहमान आएँगे, इसलिए बावर्चीखाने के तमाम बरतन अच्छी तरह साफ रखना। फर्श भी धुला हुआ होना चाहिए। इसके अलावा तुम्हें बैठक की तस्वीरों, मेज़ों और कुर्सियों को भी साफ करना होगा, समझे? मगर ख्याल रहे मेरी मेज़ पर एक तेज़ धारवाला चाकू पड़ा हुआ है, उसे मत छूना। मैं अब दफ्तर जा रहा हूँ। मगर ये काम दो घण्टे से पहले हो जाने चाहिए।"

"बहुत अच्छा साहब!"

इंस्पेक्टर साहब दफ्तर चले गए। कासिम रसोई साफ करने में मशगूल हो गया। डेढ़ घण्टे की मेहनत के बाद उसने रसोई का सब काम खत्म कर दिया। हाथ-पाँव साफ करने के बाद झाड़ू लेकर बैठक में चला गया।

थोड़ी देर बाद उसकी आँखों के सामने एक और मंज़र नाचने लगा। सामने छोटे-छोटे लड़के आपस में खेल खेल रहे थे। अचानक आँधी चलनी शुरू हुई, जिसके साथ ही एक कुरूप और भयानक राक्षस प्रकट हुआ, जो उन सब लड़कों को निगल गया। कासिम को लगा कि उस राक्षस की शक्ल-सूरत उसके आका की-सी थी। बस कद काठी के लिहाज़ से वह उससे कहीं बड़ा था। अब वह राक्षस और ज़ोर-ज़ोर-से हुंकारने लगा। कासिम सिर से पैर तक काँप गया।

अभी तमाम कमरा साफ करना था और वक्त बहुत कम रह गया था, इसलिए कासिम ने जल्दी-जल्दी कुर्सियों पर झाड़न मारना शुरू कर दिया। जब वह कुर्सियों का काम निपटाकर मेज़ साफ करने जा रहा था। उसे एकाएक ख्याल आया, "आज मेहमान आ रहे हैं, खुदा जाने कितने बरतन साफ करने पड़ेंगे। और यह नींद कमबख्त कितना सता रही है, मुझसे तो कुछ भी न हो सकेगा।"

यह सोचते समय वह मेज़ पर रखी हुई चीज़ों को पोंछ रहा था। अचानक उसे कलमदान के पास एक खुला हुआ चाकू नज़र आया। वही चाकू, जिसके बारे में उसके आका ने कहा था कि बहुत तेज़ है।

चाकू देखते ही उसके मुँह से अपने आप निकला, "चाकू, ... तेज़ धारवाला चाकू... यही तुम्हारी मुसीबत को खत्म कर सकता है।"

कुछ और सोचे बिना कासिम ने वह तेज़ धारवाला चाकू उठाकर अपनी उँगली पर फेर लिया। अब वह शाम को बरतन साफ करने की जहमत से बहुत दूर था ओर नींद, प्यारी-प्यारी नींद अब उसे आसानी से नसीब हो सकती थी।

उँगली से खून की सुर्ख धार बह रही थी। सामनेवाली दवात की सुर्ख रोशनाई से कहीं चमकीली। वह भागा हुआ अपने आका की बीवी के पास गया। वे जनानखाने में बैठी थीं। कासिम अपनी ज़ख्मी उँगली दिखाकर कहने लगा, "देखिए, बीवीजी।"

"अरे कासिम, यह तूने क्या किया? कमबख्त, साहब के चाकू को छेड़ा होगा तूने!"

"बीवी जी.... बस मेज़ साफ कर रहा था और उसने काट खाया।" कासिम हँस पड़ा।

"अबे सुअर, अब हँसता है? इधर आ, मैं इस पर कपड़ा बाँध दूँ। मगर अब बता तो सही, आज बरतन

तेरा बाप साफ करेगा?" कासिम अपनी जीत पर हलके-हलके मुस्करा रहा था।

"अब उस नमकहराम बावर्ची को बरतन साफ करने होंगे। क्यों मियाँ मिटठू?" कासिम ने खुश होकर खिड़की में लटके हुए तोते से पूछा।

शाम को मेहमान आए और चले गए। रसोई में साफ करनेवाले बरतनों का एक ढेर-सा लग गया। इंस्पेक्टर साहब कासिम की ज़ख्मी उँगली देखकर बहुत बरसे और जी खोलकर गालियाँ दीं। मगर उसे मजबूर न कर सके शायद इसलिए कि एक बार उनकी अपनी उँगली में कलम तराशनेवाले चाकू की नोंक चुभ जाने से बहुत दर्द महसूस हुआ था।

आका की नाराज़गी आनेवाली खुशी ने भुला दी और कासिम कूदता-फाँदता अपने बिस्तर में जा लेटा। तीन-चार दिनों तक वह बर्तन साफ करने से बचा रहा। मगर उसकी उँगली का ज़ख्म भर आया और अब फिर वही मुसीबत आ खड़ी हुई।

"कासिम, साहब की जुराबें और कमीज़ धो डालो।"

"बहुत अच्छा बीवीजी!"

"कासिम, इस कमरे का फर्श कितना बदनुमा हो रहा है। पानी लाकर अभी साफ करो। देखना कोई दाग-धब्बा बाकी न रहे।"

"बहुत अच्छा साहब!"

"कासिम, शीशे के गिलास कितने चिकने हो रहे हैं। इन्हें नमक से साफ करो।"

"जी अच्छा साहब!"

"कासिम, तोते का पिंजरा कितना गन्दा हो रहा है। इसे साफ क्यों नहीं करते?"

"अभी करता हूँ, बीवीजी!"

"कासिम, अभी सफाईवाला आनेवाला है। तुम पानी डालते जाना, वह सीढ़ियाँ धो डालेगा।"

"बहुत अच्छा, साहब!"

"कासिम, ज़रा भागकर दही तो ले आना।"

"अभी गया, बीवीजी!"

पाँच-छह दिन इसी तरह के आदेश सुनने में बीत गए। कासिम काम की अधिकता और आराम की कमी से तंग आ गया। हर रोज़ उसे आधी रात तक काम करना पड़ता और फिर सुबह-सवेरे चार बजे के करीब चाय तैयार करनी पड़ती। यह काम कासिम की उम्र के लड़के के लिए बहुत ज़्यादा था।

एक दिन इंस्पेक्टर साहब की मेज़ साफ हुए उसके हाथ खुद-व-खुद चाकू की तरफ बढ़े और एक लमहे के बाद उसकी उँगली से खून बह रहा था। इंस्पेक्टर साहब और उनकी बीवी कासिम की यह हरकत देखकर बहुत नाराज़ हुए। सज़ा के तौर पर उसे शाम का खाना न दिया गया। मगर वह अपनी खोजी हुई तरकीब की खुशी में मग्न था।

एक वक्त रोटी न मिली। उँगली में मामूली-सा ज़ख्म आ गया। मगर बरतनों के अम्बार से छुट्टी मिल गई। यह सौदा कुछ बुरा न था।

कुछ दिनों बाद उसकी उँगली का ज़ख्म ठीक हो गया। अब फिर काम की वही मार शुरू हो गई। पन्द्रह-बीस दिन गधों की-सी मेहनत में गुज़रे। इस अरसे में कासिम ने बार-बार इरादा किया कि चाकू से फिर अपनी उँगली ज़ख्मी कर ले, मगर अब मेज़ से वह चाकू उठा लिया गया था और रसोईवाली छुरी कुन्द थी।

एक दिन बावर्ची बीमार पड़ गया। अब कासिम को हर वक्त रसोई में मौजूद रहना पड़ता। कभी मिर्च पीसता, कभी आटा गूँथता, कभी कोयलों को हवा देता। सुबह से लेकर आधी

रात तक उसके कानों में "अबे कासिम, यह कर, अबे कासिम, वह कर," की पुकार गूँजती रहती।

बावर्ची दो रोज़ तक न आया। कासिम की नन्हीं जान और हिम्मत जबाव दे गई। मगर काम के सिवा चारा ही क्या था!

एक दिन उसके आका ने उसे अलमारी साफ करने को कहा, जिसमें दवाओं की शीशियाँ और विभिन्न प्रकार की चीज़ें पड़ी थीं। अलमारी साफ करते समय उसे दाढ़ी बनानेवाली एक ब्लेड नज़र आई। ब्लेड को पकड़ते ही उसने उसे अपनी उँगली पर फेर लिया। धार थी बहुत तेज़। उँगली में दूर तक उतर गई, जिससे बहुत बड़ा ज़ख्म बन गया।

"बीवीजी, मेरी उँगली में साहब का उस्तरा लग गया है।"

इंस्पेक्टर साहब की बीवी ने कासिम की उँगली को तीसरी बार ज़ख्मी देखा तो फौरन मामले को समझ गईं। चुपचाप उठीं और कपड़ा निकालकर उसकी उँगली पर बाँध दिया और कहा, "कासिम, अब तुम हमारे घर में नहीं रह सकते।"

"क्यों बीवीजी?"

"यह साहब से पूछना।"

साहब का नाम सुनते ही कासिम का रंग और भी सफेद हो गया। चार बजे के करीब इंस्पेक्टर साहब दफ्तर से घर आए। कासिम की नई हरकत सुनकर उसे फौरन अपने पास बुलाया, "क्यों मियाँ, ये उँगली को हर रोज़ ज़ख्मी करने का क्या मतलब है?"

कासिम खामोश खड़ा रहा।

"तुम नौकर यह समझते हो कि हम लोग अँधे हैं! हमें बार-बार धोखा दिया जा सकता है? अपना बोरिया-बिस्तर दबाकर नाक की सीध में यहाँ से भाग जाओ, हमें तुम जैसे नौकरों की कोई ज़रूरत नहीं, समझे।"

"मगर, मगर साहब....!"

"साहब का बच्चा। भाग जा यहाँ से। तेरी बकाया तनख्वाह का एक पैसा भी नहीं दिया जाएगा। अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहता।"

कासिम रोता हुआ कमरे से बाहर चला गया। तोते की तरफ हसरत भरी निगाहों से देखा। तोते ने भी खामोशी में उससे कुछ कहा। कासिम अपना बिस्तर लेकर सीढ़ियों से उतर गया। अचानक कुछ ख्याल आया और वह भागा हुआ अपने आका की बीवी के पास गया। और दर्दभरी आवाज़ में इतना कह कर कि "सलाम, बीबीजी, मैं हमेशा के लिए जा रहा हूँ।" वहाँ से रुखसत हो गया।

??

खैराती अस्पताल में एक लड़का दर्द की शिद्दत से लोहे के पलंग पर करवटें बदल रहा है। पास ही दो डॉक्टर बैठे हैं। उनमें से एक डॉक्टर ने अपने साथी से कहा, "ज़ख्म खतरनाक सूरत अख्तियार कर गया है, हाथ काटना पड़ेगा।"

"बहुत बेहतर।" कहते हुए दूसरे डॉक्टर ने अपनी नोटबुक में उस मरीज़ का नाम दर्ज़ कर लिया।

बिस्तर के सिरहाने लटकी तख्ती पर लिखा थाः

नाम : मुहम्मद कासिम वल्द अब्दुर्रहमान (मरहूम)
उम्र : दस साल

अच्छे बच्चे

नरेश सक्सेना

कुछ बच्चे बहुत अच्छे होते हैं
वे गेंद और गुब्बारे नहीं माँगते
मिठाई नहीं माँगते, ज़िद नहीं करते
और मचलते तो हैं ही नहीं

बड़ों का कहना मानते हैं
वे छोटों का भी कहना मानते हैं
इतने अच्छे होते हैं

इतने अच्छे बच्चों की
तलाश में रहते हैं हम
और मिलते ही
उन्हें ले आते हैं घर
अकसर
तीस रुपए महीने और खाने पर।

चित्रः प्रशान्त सोनी

उम्मीद का उड़ता परिन्दा - कैस

निधि सक्सेना

हमारे हर ओर इतने लोग, इतने बच्चे हैं। क्या पता कोई क्या जादू जानता हो, कोई घर चलाता है, कोई पतंग उड़ाता है, जूते बनाता है, गाय का दूध निकालता है या बकरी चराता है। हम उनके नाम भी नहीं जानते लेकिन उनका कुछ रुझान ज़रूर होगा। वो रुझान बना रहे, उन्हें मज़ा दे और हमें भी कभी-कभी उनका हुनर देखने का मौका मिले इससे अच्छा और क्या होगा! जैसे इस फिल्म कैस के हीरो बिली के साथ होता है...

बिली कैसपर से अगर पूछा जाता कि बड़े होकर वह क्या बनेगा तो शायद ही कोई लुभावना-सा चटकारेदार जवाब मिलता। बल्कि इस सवाल के जवाब में वो गुम-सा हो जाता। किन ख्यालों में गुमता, यह कोई नहीं जानता। ऐसा भी नहीं कि उम्र में बड़ों ने उसके मुँह में अपने जवाब ठूँसने की कोशिश नहीं की। पर बिली को यह जमा नहीं। तो उसे अलग और अजीब कहकर हमारे सवालों-जवाबों की दुनिया से परे सरका दिया गया।

अकसर लोग कहते हैं कि बच्चों की तो अपनी अलग दुनिया होती है। पर ऐसे तो हम सबकी अपनी अलग-अलग दुनियाएँ हैं। फिर भी हम सब एक ही दुनिया में रहते हैं, उसे ही साझा करते हैं। और बच्चों की भी दुनिया यही है। उनकी इज़्ज़त होती है तो बेइज़्ज़ती भी। वे भी हँसते-रोते हैं, उदास-अकेले होते हैं, वे भी कुछ चाहते हैं, खोजते हैं, कभी पाते हैं, कहीं खो देते हैं। बिली कैसपर की कहानी भी इससे अलग नहीं है।

बिली कैसपर उस उम्र में हैं जब वो बच्चा भी नहीं रहा है और बड़ा तो नहीं ही हुआ है। अपने हमउम्रों की तरह बिली के जीवन में भी अच्छी-बुरी लगनेवाली चीज़ें हैं। जैसे नींद, रज़ाई, अलार्म घड़ी, खिड़की, दीवारें, कॉमिक्स, सर्दी में ठण्डा पानी, कोच की सीटी, स्कूल की लम्बी-लम्बी प्रार्थनाएँ, देर से जगना और मुँह-हाथ धोए बगैर कपड़े बदल सीधे काम को भागना।

बिली अखबार बाँटने का काम करता है। वो अकसर अकेला ही दिखता है जबकि उसकी उम्र का हर व्यक्ति या तो झुण्ड में है या किसी के साथ। क्लास में सबके बीच बैठे बिली को पुकारो तो लगता वो अब तलक तो यहाँ था नहीं, पुकारा तो कहीं से उठकर आया है। लेकिन कहाँ से? ये भला कौन सोचना चाहता है! सब तो एक मौका, एक और बहाना चाहते हैं बिली को चिढ़ाने, मज़ाक उड़ाने या धमकाने का। बिली की दोपायों से नहीं बनती वो अकसर इंसानों का जंगल छोड़ झाड़ियों-पेड़-पौधों से मिलने जंगल चला जाता है।

यह फिल्म एक शहर और एक किशोर का रिश्ता भी बताती है। कि कैसे कभी एक किशोर घर जाना नहीं चाहता और सड़क उसे कहीं ले नहीं जाती। वो सूखी डाल उठाता है पोखर में पत्थर उछालता है, सड़क पर गिरी मज़ेदार चीज़ें उठाता है, बेर चबाता है और आसमान को तकते हुए यूँ ही सड़कों पर घूमता है। अपनी बोरियत, बेख्याली और अकेलेपन को मोज़ों में ठूँसे घूमते बिली ने एक दिन एक बाज़ को आकाश में घूमते देखा। जैसे बिली अकेला वैसे बाज भी अकेला था। बिली अपने यूँ ही भटकने का अर्थ पा जाता है। हालाँकि अर्थ पाने के रस्ते हमेशा लॉन्ग कट ही से जाते हैं। बीच में सौ पड़ाव, मुश्किलें आती हैं – लाइब्रेरी पड़ाव तो लाइब्रेरी में दाखिल होना मुश्किल। नाकाम होते झूठ और तलाश में बिली बेचैन फिरता है। आखिर किताब घर की एक मोटी किताब में वह आकाशवाले उस बाज़ का फोटो देख पाता है। बिली को अब अपनी मंज़िल पता है – फाल्कनरी (बाज़ को सिखाकर उससे मन मुताबिक काम करवाना)। बिली बाज़ को अपने मनमुताबिक उड़ाने और फिर बुलाकर अपने कँधे पर उतार लेने को आतुर है। बाज़ आखिरकार बिली का कहा मान लेता है और आकाश से सीधे उसके हाथ पर उतरता है। बिली

बिली कोई पुरस्कार नहीं पाता, पैसा और नाम नहीं कमाता उसको कोई वैसा फायदा नहीं होता जिसकी लोग कदर करते हैं, लेकिन जो शौक रखते हैं, वो उसकी कीमत जानते हैं।

सभी चित्र : इन्टरनेट

उसे कैस कह कर पुकारता है। कैस और बिली के मन की तरंगें आकाश में साथ उड़ने और रुकने लगती हैं। कैस मानो पतंग हो और दोस्ती की डोर बिली के हाथ हो।

स्कूल, खेल के मैदान या घर में लोगों के साथ वाला बिली, कैस के साथ वाले बिली से अलग है। चाहे वो भीड़ भरे बाज़ार में उत्सुक अजनबियों को कैस के बारे में बता ही क्यूँ न रहा हो! कैस ने बिली को ज़मीन पर खास बना दिया और बिली ने कैस को आकाश में।

इस फिल्म का छायांकन (फोटोग्राफी) ऐसा है जैसे कोई दार्शनिक ज़िन्दगी की बात करे। ढेर से अँधेरे के बीच रोशनी का एक टुकड़ा जैसे दीवार पर एक खिड़की रहती

है। एकदम अँधेरा कमरा और छोटी-सी खिड़की में होती सुबह का ठण्डा नीला धुँधलका। किसी गली से निकलता बिली जैसे किसी खोह से हुआ हो उजागर, कभी छायादार गलियों में घुसता कभी सूरज में निकलता, किताबघर में बिली अँधेरे में और किताबों पर उजाला।

हाँ, जिस रोज़ बाज़ बिली की हथेली पर बैठा उस रोज़ कोई साया नहीं था। खिली हुई चटकीली धूप और खूब-खूब उजाला था। यहाँ फिल्म का कलर पैलेट बदल जाता है। अब तक गहरा नीला, धुँधला हरा रंग छँटकर साफ चमकदार शोख लाल और सुहाना हरा बन जाता है। हालाँकि धुँधलका फिर आता है कुछ और काला हो क्योंकि फॉल्कनरी बिली के हालात और लोगों को बदलती नहीं दिखती है।

बाज़ = फाल्कन = केस्ट्रेल = कैस
निर्देशक - केन लोच

बिली कोई पुरस्कार नहीं पाता, पैसा और नाम नहीं कमाता उसको कोई वैसा फायदा नहीं होता जिसकी लोग कदर करते हैं, लेकिन मुश्किल वक्त में भी कुछ हैं बिली जैसे जो दोस्ती करते हैं, शौक रखते हैं।

फिल्म का पार्श्व संगीत (बैकग्राउण्ड म्यूज़िक) कमाल का है। घड़ी की टिक टिक के साथ चैन की बँसी यूँ बजती है जैसे सुबह की सुहानी नींद और उठने का समय दोनों पक्के दोस्तों की तरह हमेशा साथ आ धमकते हैं। मस्ती का माउथऑर्गन भी है बिली की बेचैन चाल के साथ। यानी बाज़ के बारे में जानने की बेचैनी और खोजबीन की आतुरता साथ-साथ। कैस से दोस्ती हुई और सुरों में सीटियाँ बजने लगीं। बिली को राह मिलते ही ताल और थाप आ गई।

इस फिल्म का नाम कैस है बिली नहीं। मानो ये यात्रा कैस की हो। हाँ, इतना ज़रूर है कि कैस बिली के साथ माने पा गया था। बिली से मिलने के पहले कैस भी तो अकेला था – यूँ ही बेमतलब, बोरियत में आकाश नापता।

इस फिल्म का सबसे रोशन पहलू है इसकी सच्चाई। हमारे समय में एक स्वप्नशील किशोर के जीवन की विश्वसनीय छवियाँ। उसके बाहरी और भीतरी जीवन की विश्वसनीय तस्वीर। फिल्म दुखान्त है। ज़मीनी हकीकत को यहाँ कोई आसमानी ख्वाब नहीं बदलता, बल्कि सपने सच को कुछ और कड़वा कर देते हैं। यहाँ रोज़गार दफ्तर है, भीड़ है, फीस न भर पाने की सज़ा है, कुछ ऊबी हुई पार्टी हैं, हर उम्र में बिन मकसद जिए जाने का भाव है। बड़ों के हाथ में बेंत और याद में पुराने कड़वे दिन हैं। बच्चों के हाथों पर बेंत के जलते निशान और आँख में आँसू हैं, बिना गलती की सज़ाएँ हैं।

फाल्कनरी इस सबके आगे बहुत गैर-गम्भीर साबित होती है, पैसे और नाम को इज़्ज़त देनेवाले समाज में बिली बस कैस को दफना ही पाता है।

चित्र पहेली
बाएँ से दाएँ
ऊपर से नीचे
INDIAN RED CROSS SOCIETY
RECEIPT

RNI क्र. 50309/85 डाक पंजीयन क्र. म.प्र. / भोपाल / 261 / 2015-17

नदी

आज नदी बिलकुल उदास थी
सोई थी अपने पानी में
उसके दर्पण पर –
बादल का वस्त्र पड़ा था
मैंने उसको नहीं जगाया
दबे पाँव घर वापिस आया

- केदारनाथ अग्रवाल

प्रकाशक एवं मुद्रक अरविन्द सरदाना द्वारा स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो के लिए एकलव्य, ई-10, शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल 462016, म.प्र. से प्रकाशित एवं आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित।
सम्पादकः सुशील शुक्ल